दंसण मूलो धम्मो

आत्मधर्म

शाश्वत सुखका मार्गदर्शक आध्यात्मिक मासिक

वीर सं० २४९६ तंत्री-पुरुषोत्तमदास शिवलाल कामदार, भावनगर वर्ष २५ अंक नं० १०

अध्यात्म-पद

तोहि समझायौ सौ सौ बार, जिया तोहि समझायो० ॥टेक॥

देख सुगुरु की परहित में रति, हित उपदेश सुनायो ॥तोहि० ॥

विषय भुजंग सेय सुख पायो पुनि तिनसौं लपटायो।
स्वपद विसार रच्यौ परपद में, मदरत ज्यों बौरायो ॥तोहि० ॥

तन धन स्वजन नहीं हैं तेरे, नाहक नेह लगायो।
क्यों न तजै भ्रम चाख समामृत, जो नित संत सुहायो ॥तोहि० ॥

अबहूँ समझ कठिन यह नरभव जिन वृष बिना गमायो।
ते बिलखैं मनि डार उदधि में, दौलत को पछतायो ॥तोहि० ॥

चारित्र

ज्ञान

दर्शन

श्री दिगंबर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट, सोनगढ (सौराष्ट्र)

मार्च : १९७० वार्षिक मूल्य ३) रुपये (२९८) एक अंक २५ पैसा [माघ : २४९६

— श्री अंतरिक्ष पार्श्वनाथ दिगंबर जैन तीर्थ—

शिरपुर (आकोला)

पूज्य व प्राचीन तीर्थ जीर्णोद्धार महोत्सव अंतर्गत—

श्री जिनबिंब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

समस्त दिगम्बर जैन समाज की, सेवा में निवेदन:—

अनेक वर्षों बाद इस परमपूज्य अतिशय क्षेत्र पर प्रथम बार ही यह महोत्सव मनाया जा रहा है। इस महोत्सव का मुख्य उद्देश सामाजिक संगठन, जागृति, तथा ऐतिहासिक व सांस्कृतिक पुरातन तीर्थक्षेत्रों के प्रति रुचि व जागृति निर्माण करना तथा धार्मिक प्रभावना यह है। इस महोत्सव के लिये भारतवर्ष के समस्त दिगम्बर जैन समाज के गणमान्य प्रतिनिधियों को तथा अखिल भारतवर्षीय तीर्थक्षेत्र कमैठी के सारे प्रतिनिधियों को आमंत्रित किया गया है। सोनगढ़ से आत्मार्थी सत्पुरुष श्री कानजीस्वामी ने ससंघ पधारने की स्वीकृति दी है। तथा आपकी ही छत्रछाया में यह पुनीत महोत्सव मनाया जायेगा।

यह महोत्सव फाल्गुन कृष्णा ८वीं दिनांक १ मार्च १९७० से फाल्गुन शुक्ला २ दिनांक ९ मार्च १९७० तक मनाया जावेगा। समस्त समाज से प्रार्थना है कि इस अपूर्व अवसर पर पधारकर धर्मप्रभावना में सहयोग दें और धर्मलाभ प्राप्त करें।

श्री जन्मकल्याणक का जन्माभिषेक एक हजार आठ (१००८) कलशों द्वारा संपन्न होगा। इनमें १०८ कलशों की बोली समय पर होगी। शेष जिन-जिन भाईयों की यह मंगलमय अभिषेक-कलश लेने की भावना हो, वे शीघ्रातिशीघ्र अपना पूर्ण नाम, पता व कलशों की संख्या सूचित करें।

विनीत—

श्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति

शिरपुर

पत्र-व्यवहार का पता—

श्री कार्यवाह, श्री जिनबिम्ब पंचकल्याणक

प्रतिष्ठा-महोत्सव समिति

ठिकाना-**श्री अं.पा. दिगम्बर जैन संस्थान,** मु.पो. शिरपुर

जिला—आकोला (महाराष्ट्र)

शाश्वत् सुख का मार्गदर्शक मासिक-पत्र

आत्मधर्म

संपादक : (१) श्री ब्र० गुलाबचंद जैन (२) श्री ब्र० हरिलाल जैन

मार्च : १९७० ☆ माघ, वीर नि०सं० २४९६, वर्ष २५ वाँ ☆ अंक : १०

अनित्य भावना

जीवन क्षणभंगुर है; बादलों की भाँति देखते ही देखते विलीन हो जाता है। धन-दौलत-मकान-कुटुंब-शरीरादि जो भी दिखायी देते हैं, वे सब नश्वर हैं; भोगोपभोग अनित्य हैं, वे किसी के भी साथ प्रीति नहीं करते; पुण्यशाली चक्रवर्ती को भी जबतक पुण्य का उदय रहता है, तभी तक वे भोगोपभोग की सामग्रियाँ रहती हैं; पुण्य पूरा हो जाने पर वे भी छोड़कर चली जाती हैं। जगत में एक अपना आत्मा ही ऐसी वस्तु है जो सदा शाश्वत रहता है, जिसका कभी वियोग नहीं होतहा। इसलिए हे आत्मा! तू समस्त बाह्य वस्तुओं से ममत्व को हटाकर स्व में ही स्थिर हो.... वही तेरी वस्तु है।

ज्ञानरस का अत्यंत मधुर स्वाद

[समयसार, कलश-१६०]

❀ आत्मा का स्वभाव एक ज्ञायकभावरूप है; राग उसके स्वभाव में नहीं; चेतकपना ज्ञानस्वभाव में ही है। उस ज्ञानस्वभाव का स्वाद महान आनंदरूप है।

❀ ज्ञानस्वभाव के सन्मुख होकर उसका स्वाद लेनेवाला जीव, रागादि अन्य भावों के स्वाद का किंचित्मात्र भी आस्वादन नहीं करता; चैतन्य के आनंदरस को चखनेवाला जीव राग के आकुलरस का किंचित् भी स्वाद नहीं लेता।

❀ हिम की शीतलता का वेदन करनेवाला अग्नि की उष्णता का वेदन क्यों करेगा? उसीप्रकार चैतन्य के हिम जैसे परम उपशांत रस का अनुभव करनेवाला जीव अग्नि जैसे रागादिक के आकुलतामय रस का क्यों अनुभव करेगा? शुभराग के वेदन में भी आकुलता है, शांति नहीं; शांति तो चैतन्य के वेदन में ही है।

❀ पर्याय को अंतर में एकाग्र करके धर्मात्मा अकेले ज्ञानमात्रभाव का अनुभव करता है कि 'यह ज्ञायकभाव मैं हूँ।'—ऐसे एक ज्ञायकभाव का ही बारंबार स्पर्श करता हुआ—अनुभव करता हुआ ज्ञानी जीव राग का स्पर्श नहीं करता, उसको अपनेरूप किंचित् भी नहीं देखता। शरीर की तो बात ही क्या, ज्ञान के वेदन में राग का भी अभाव है।—ज्ञान में जैसा शरीर का अभाव है, वैसा रागादि का भी अभाव है। ऐसा एक ज्ञानभाव वही आत्मा है।

❀ अंतर में आनंद का पान करता हुआ धर्मी जीव राग का स्वाद क्यों लेगा? मीठी मलाई खानेवाला अफीम का सवाद क्यों लेगा?—अहो, ऐसे ज्ञानभावमय शुद्ध निजपद है, वही स्वाद लेने योग्य है।

*उस आनंद का स्वाद कैसा होगा?

अंतर्मुख होने पर अनुभव में आये ऐसा। ऐसे आनंद का अनुभव कर-करके अनंत जीव सर्वज्ञ हुए हैं।

❀ वह स्वाद किसप्रकार आयेगा?

जिसप्रकार राग में लीन होकर उसकी आकुलता का स्वाद लेता है, उसीप्रकार चैतन्यस्वभाव में लीन होकर उसके निराकुल अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद आता है।

❀ अहो, इस एक स्वरूपज्ञान के रसमय स्वाद के समक्ष अन्य सभी रस नीरस लगते हैं। चैतन्य का वीतरागी स्वभाव जिसने चखा, उसको राग का स्वाद दुःखरूप लगता है। जिसने राग रहित चैतन्य के वीतरागी सुख का स्वाद नहीं लिया, वही शुभराग में सुख मानता है; किन्तु उसमें सुख नहीं है। सुख तो आत्मा का स्वभाव है; एक ज्ञायकस्वभाव के अनुभव में ही सुख है—ऐसा सुख जगत में अन्यत्र कहीं भी नहीं है; इस चैतन्यसुख के समीप इन्द्रपद की विभूति भी तुच्छ दिखलाई देती है। सम्यग्दृष्टि इन्द्र अपने आत्मा के अतीन्द्रिय सुख का आस्वादन करता है, उस सुख के समीप इन्द्रपद का जड़ वैभव उसे बिलकुल नीरस लगता है; शुभराग का रस नीरस है—आकुलतामय है; उसमें शांति या सुख का स्वाद नहीं।

❀ देखो तो सही, यह वीतरागी भेदज्ञान! जितने रागादि परभाव हैं, उन सभी को प्रज्ञाछैनी के द्वारा सर्वथा छेदकर ज्ञान से भिन्न करना चाहिये। अंदर किसी राग के विकल्प के एक अंश की भी मिठास रह जाये तो शुद्ध ज्ञान का स्वाद उसे नहीं आता, भेदज्ञान उसको नहीं होता।

❀ इस ओर अंतर में जो शुद्ध ज्ञायक एकभावरूप से अनुभव में आता है, वही मैं हूँ; इसके अतिरिक्त बाह्य में जो भी शरीरादि-रागादि विविधभाव हैं, वे सभी मुझसे अन्य परद्रव्य हैं। मेरे चैतन्यलक्षण से उनका लक्षण भिन्न है—ऐसा समस्त परभावों से अत्यंत भेदज्ञान करके शुद्ध ज्ञान का अनुभव करना, वह सिद्धांत का सार है, वही मोक्ष का मार्ग है।

चौथे गुणस्थान के सम्यक्त्वी ने भी चैतन्य के अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद लिया है; निर्विकल्प होकर आनंद का अनुभव किया है। राग उस भूमिका में है, किंतु भेदज्ञान के बल से राग को भिन्न करके अकेले ज्ञायकरस का स्वाद वह लेता है, तथा उस स्वाद को ही अपना जानता है।

शुद्धनय की शक्ति ऐसी है कि अधूरी पर्याय तथा अशुद्ध पर्याय होने पर भी, आत्मा को पूर्ण-शुद्ध स्वरूप से देखता है, तथा ऐसे आत्मा को ध्यान में ध्याते हुए जो साक्षात् आनंद आता है, उसका धर्मी जीव अनुभव करता है। अज्ञानी अपने को रागवाला ही अनुभव करता है,

अर्थात् शुद्ध स्वभाव के आनंद का स्वाद उसको नहीं आता, उसको तो राग की आकुलता का ही स्वाद आता है।

❀ आत्मा में स्वाद होता है ?

हाँ, आनंदरस का अतीन्द्रिय स्वाद आत्मा में ही है, अन्यत्र कहीं भी नहीं। आत्मा में जड़ का खट्टा स्वाद नहीं होता, उसीप्रकार हर्ष-शोक के वेदनरूप जो दु:ख का स्वाद है, वह भी आत्मा के ज्ञानस्वभाव में नहीं है, ज्ञानस्वभाव में से तो अत्यंत मधुर स्वसंवेदनरूप वीतरागी आनंद का स्वाद आता है। चैतन्यरस का वह स्वाद सिद्ध भगवान जैसा है; अंतर के अनुभव द्वारा जीव जब अपने आत्मा का स्वाद लेता है, तभी वह धर्मी है, और उस आनंद का मधुर स्वाद लेता हुआ वह सिद्धपद की साधना करता है।

सुख की सहेली है अकेली उदासीनता

संसार में संयोग या वियोग का चाहे जो प्रसंग आये, परंतु मुमुक्षु जीव को तो आत्महित के मार्ग पर ही आगे बढ़ना चाहिये। जवान पुत्र की मृत्यु आदि के प्रसंग पर जीव को दु:ख होता है, किंतु उसी समय दु:ख के सामने सदा सुख का धाम ऐसे चैतन्य भगवान की भावना तथा वैराग्य को बनाए रखे तो जीव को आत्महित का पौरुष चढ़े। संतों ने कहा है कि सुख की सहेली तो उदासीनता है, 'सुख की सहेली है, अकेली उदासीनता।'

चैतन्यमय जीव की राग से अत्यंत भिन्नता

[ऐसा तत्त्व तीर्थंकर के श्रीमुख से निकला... संतों ने झेला... और शास्त्रों में गूँजा।]

(सोलह बोलों द्वारा कही गई सोलह आने बात)

(१) जीव शुद्धज्ञानमय है; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-आनंद, वे जीव के परिणाम हैं।

(२) कर्म या शुभराग, वे जीव के परिणाम को नहीं जानते तथा स्वयं अपने को भी नहीं जानते, क्योंकि उनमें चेतनपना नहीं है।

(३) अचेतन ऐसे रागादि परिणाम, वे जीव के निर्मल ज्ञानपरिणाम को उत्पन्न नहीं करते।

(४) ज्ञानस्वरूप आत्मा ही अपने ज्ञानपरिणामरूप उत्पन्न होता है, राग उनको उत्पन्न नहीं करता, अर्थात् राग के आश्रय से उनकी उत्पत्ति नहीं होती।

(५) उसीप्रकार, ज्ञानपरिणामरूप उत्पन्न होनेवाला वह आत्मा, अपने में से रागादि को उत्पन्न नहीं करता-रागरूप स्वयं उत्पन्न नहीं होता।

(६) जिसप्रकार मिट्टी का तथा कुम्हार का परिणमन भिन्न है, उसीप्रकार रागादि तथा ज्ञान का परिणमन भिन्न है। मिट्टी को अपने परिणामरूप घड़े के साथ एकता है, उसीप्रकार आत्मा को अपने ज्ञानपरिणाम के साथ एकता है।

(७) ज्ञानी का आत्मा ज्ञानपरिणाम के साथ ही तन्मय होकर परिणमन करता है, अन्य किसी परभाव में उसके परिणाम तन्मय नहीं होते। ऐसे ज्ञानपरिणामों द्वारा ज्ञानी पहिचाना जाता है।

(८) चेतन के परिणाम राग को स्पर्श नहीं करते, वे राग से भिन्न रहकर, चैतन्यस्वभाव का स्पर्श करते हैं; चैतन्यस्वभाव के साथ उनकी एकता है।

(९) परभावों से भिन्नता तथा निजस्वभाव के साथ एकता, ऐसी दशारूप धर्मी परिणमन करता है; और वही आत्मा का सच्चा स्वरूप है।

(१०) तीर्थंकर के श्रीमुख से जो तत्त्व आया, उसको झेलकर संतों ने अनुभव किया तथा शास्त्रों में गूँथा। उनमें कहा गया शुद्धात्मा ज्ञानपरिणामवाला ही है। ऐसे आत्मा को अनुभव में लेना, वह धर्म है, वह भगवान का मार्ग है।

(११) जिसप्रकार जड़द्रव्य के द्वारा चेतन की उत्पत्ति नहीं होती, उसीप्रकार राग के

द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती, क्योंकि दोनों भिन्न हैं।

(१२) यदि शुभराग द्वारा ज्ञान की या मोक्षमार्ग की उत्पत्ति हो तो, राग तथा ज्ञान एक हो जायेंगे—तथा ऐसे होने से आत्मा ज्ञानमय न रहकर रागमय हो जायेगा।—तब फिर राग से भिन्न आत्मा का अनुभव किया ही नहीं जा सकता। अर्थात् वीतरागी मोक्षमार्ग का ही अभाव हो जायेगा।—किंतु ऐसा वस्तु का स्वरूप नहीं है। राग से भिन्न ज्ञानमय आत्मा अनुभव में आता है; राग द्वारा ज्ञान की उत्पत्ति कभी नहीं होती।

(१३) सम्यग्दर्शन पर्याय हो, उसके प्रारंभ में, मध्य में या अंत में कहीं भी राग है ?—तो कहते हैं कि नहीं, उसमें कहीं भी राग नहीं; सम्यग्दर्शन में सर्वत्र ज्ञानमय शुद्ध आत्मा ही है; आत्मा का ही उस पर्याय में प्रसरण हुआ है; उसमें राग का प्रसरण नहीं हुआ। राग से तो वे सम्यग्दर्शनादि परिणाम अत्यंत भिन्न ही हैं।

(१४) सम्यग्दर्शनादि परिणाम तथा राग—इन दोनों का एक काल हो तो उससे क्या ? उससे कहीं वे एक-दूसरे का कार्य नहीं करते। सम्यग्दर्शन राग को उत्पन्न नहीं करता और राग द्वारा सम्यग्दर्शन उत्पन्न नहीं होता। धर्मी को तो राग, रागरूप उत्पन्न होता दिखायी देता है, किंतु कहीं ज्ञानरूप दिखायी नहीं देता; इसलिये धर्मी उस राग को नहीं करता; वह तो ज्ञानरूप उत्पन्न होता हुआ ज्ञान को ही करता है।

(१५) भेदज्ञान के एक प्रहार से राग तथा ज्ञान के दो टुकड़े भिन्न-भिन्न हो जाते हैं। प्रज्ञाछैनी के प्रहार से ज्ञान तथा बंधभाव सर्वथा भिन्न हो जाते हैं। भेदज्ञान राग तथा चेतन को सर्वथा भिन्न जानता है, उनमें किंचित् भी एकता नहीं देखता। इसप्रकार भिन्न जानकर अंतर में ज्ञानस्वरूप से ही वह अपना अनुभव करता है। ऐसे अनुभव द्वारा बंध टूटता है और मुक्ति होती है।

(१६) परद्रव्य की ओर झुकनेवाले जो रागादि परिणाम, उनके द्वारा जीव के सम्यग्दर्शनादि भाव नहीं किये जा सकते; आत्मा के ज्ञानस्वभाव द्वारा ही वे भाव हो सकते हैं। इसलिये उन सम्यग्दर्शनादि को राग के साथ किंचित् भी एकता नहीं किंतु भिन्नता है; ज्ञानस्वभाव के साथ ही उनकी एकता है। निज स्वभाव के साथ एकता का अनुभव करनेवाला जीव ज्ञानी है।

इन सोलह बोलों द्वारा भेदज्ञान करके, ज्ञान और राग के सर्वथा भिन्नत्व का अनुभव करने पर सोलह आने (परिपूर्ण) ऐसा सिद्धपद प्रगट होता है।●

असार संसार में एक ही शरण

विभाव परिणतिरूप जो यह संसारदशा है, इसमें कहीं भी सुख नहीं। संसार-अवस्था दु:खरूप ही है। जीव बाह्य-सामग्री को सुख का अथवा दु:ख का साधन मानता है, यह भ्रम है। बाह्य-सामग्री को रखना अथवा दूर करना चाहता है किंतु यह कहीं उसके हाथ की बात नहीं, अर्थात् उसमें भी इच्छा के द्वारा आकुल-व्याकुल ही होता है। अनुकूल संयोग प्राप्त होने से सुख मानता है किंतु वह कहीं सुख नहीं। वास्तविक सुख क्या है? उसके स्वरूप की उसे खबर नहीं। कभी संयोग को या कभी मंद आकुलता को सुख मानता है, किंतु चैतन्यतत्त्व तो राग तथा संयोग से रहित है, उसको कहीं बाहर से सुख लाना नहीं पड़ता किंतु स्वयं सुखरूप ही है; ऐसे निराकुल सुखस्वरूप को वह पहिचानता नहीं, इसलिये जीव दु:खी होता है। मिथ्यात्व का जो दु:ख है, वह सम्यग्दर्शनादि द्वारा ही दूर होता है अन्य कोई उपाय नहीं है।

अरे, यह संसार! देखो न, क्षण में संयोग चले जाते हैं। जिसको सुख का साधन मानकर रक्षा करना चाहता है—ऐसा एकमात्र प्यारा पुत्र इत्यादि क्षण में देखते-देखते चले जाते हैं। जीव सुख के लिये संयोगों में व्यर्थ ही झूरता है, तथा संयोग चले जाने पर मानो सुख का साधन चला गया—ऐसा मानकर महादु:खी होता है। चैतन्यस्वभाव में सुख है तथा दु:ख है, वह मोह से ही है—ऐसा समझकर मोह को दूर करे तो दु:ख दूर होकर सुख प्राप्त होता है। इसके अतिरिक्त संयोगों का परिवर्तन करना चाहे तो वह कहीं जीव के आधीन बात नहीं, तथा इच्छा के अनुसार किंचित् संयोग प्राप्त हो जायें तो भी उनमें कहीं सुख नहीं। भाई, संयोग के तरफ की वृत्ति को दूर करके संयोग से भिन्न चैतन्य तत्त्व में स्वोन्मुख हो। आत्मा ही आनंदस्वरूप है, उसकी श्रद्धा के द्वारा ही शांति प्राप्त होती है—इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं।

किसी समय संयोग ऐसे प्राप्त होते हैं कि लाखों रुपये का दान देता है... और उसी जीव को कभी ऐसे संयोग आ जाते हैं कि रोटी खाने को नहीं मिलती।—ऐसे दोनों प्रकार के संयोग साता-असाता के उदय के निमित्त के अनुसार प्राप्त होते हैं, उसमें जीव का प्रयत्न किंचित् भी कार्यकारी नहीं होता। जीव मोह से व्यर्थ में ही दु:खी होता है; इसका विचारपूर्वक समाधान

करके सम्यग्दर्शनादिक प्रगट करे तो सुखी हो और आकुलता दूर हो।

सम्यक्त्वी विचार करता है:—

अरे, जिससे पापास्रव होता हो, ऐसी संपदा किस काम की? और यदि मेरे पापास्रव नहीं है, तब फिर अन्य संपदा का मेरे क्या काम? बाह्य-संपदा हो या न हो, किंतु मेरा आत्मा निरास्रव रहना चाहिये—यही मेरा प्रयोजन है। बाह्य-संपदा से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है, क्योंकि उसमें कहीं भी मेरा सुख नहीं है। मेरा सुख तो आस्रव से रहित मेरी स्वरूप-संपदा में ही है। जहाँ मिथ्यात्वादि आस्रवभाव रुक गये, वहाँ केवलज्ञानादि स्वरूप-संपदा प्राप्त हो जायेगी—तब अन्य संपदा से मेरे को क्या प्रयोजन? तथा जो बाह्य-संपदा प्राप्त हो जाये और आस्रव नहीं रुके तो ऐसी संपदा से भी क्या प्रयोजन? इसप्रकार भावना भाता हुआ धर्मात्मा जीव चैतन्य की साधना करने में तत्पर रहता है। अरे, चैतन्य-संपदा के सामने धूल के समान यह बाह्य-संपदा किस काम की है? चैतन्य की साधना करते-करते अल्पकाल में केवलज्ञान-संपदा प्राप्त हो जायेगी, तथा बीच में राग के फलरूप इन्द्रादि पद की संपदा तो सहज में ही आ पड़ेगी। शुद्ध आनंदकंद संपदावाला मेरा आत्मा ही है—ऐसा धर्मी अनुभव करता है। धर्मी को अपने अंतर में चैतन्य की रिद्धि-सिद्धि सदा वृद्धि को प्राप्त होती हुई दिखलाई देती है, चैतन्य की रिद्धि-सिद्धि के अनुभव में वह जगत से उदासीन है। भगवान का दास है तथा जगत के उदास है—ऐसा चैतन्य-ऋद्धिवंत सम्यक्त्वी सदा सुखी है। चैतन्य की ऋद्धि से परिपूर्ण ऐसे अपने आत्मा को धर्मी अमर जानता है। ऐसे आत्मा की पहिचान करना, वही एक असार संसार में शरणरूप है।

(एक वैराग्य-प्रसंग के प्रवचन से)

—००—००—

❀ राग को जानते समय भी ज्ञान तो ज्ञान ही है, ज्ञान कहीं राग नहीं हो गया है; ज्ञान यदि स्वयं राग हो जाये तो राग को जानेगा कौन?

❀ राग के अभाव में आत्मा का अभाव नहीं हो जाता, क्योंकि राग, वह आत्मस्वभाव नहीं है।

ज्ञान न हो तो आत्मा न हो, क्योंकि ज्ञान, वह आत्मस्वभाव है। इसलिये ज्ञान और राग भिन्न हैं—एक आत्मस्वभाव है और दूसरा आत्मस्वभाव नहीं है।

ज्ञानी आहार के बिना ही जीवित रहता है

ज्ञानी का जीवन ज्ञानमय है, रागमय या पुद्गलमय नहीं। अपने ज्ञान तथा आनंद के स्वाद द्वारा ही ज्ञानी जीवित है; उसमें इच्छा अथवा आहार का अभाव है, इसलिये उसके बिना ही ज्ञानी जीवित है।

(समयसार गाथा २१३)

आत्मा को ज्ञानस्वभाव परमसुख से भरा हुआ है, उसके अनुभव से तू तृप्त हो।—ऐसा गाथा २०६ में कहा है। जो जीव अपने ऐसे स्वभाव का अनुभव करता है, वह अपने स्वभाव से ही स्वयमेव तृप्त-संतुष्ट तथा सुखी होता हुआ, परद्रव्य के अंश मात्र की इच्छा नहीं रखता; परद्रव्य तथा उसके तरफ की इच्छा का उसके ज्ञान में अभाव है, इसलिये ज्ञानी को इस परद्रव्य की या इच्छा की पकड़ नहीं, उसका ममत्व भी नहीं।

परंतु जिसको अपने ऐसे ज्ञानस्वभाव का अनुभव नहीं, वह जीव अतृप्त होकर परद्रव्य की इच्छा करता है, पुण्य-पाप, आहार-पानी इत्यादि में सुख मानता हुआ उसका वह ममत्व करता है; ऐसा जीव परद्रव्य के परिग्रह से दुःखी है, अपने आनंदस्वभाव का स्वाद उसको नहीं आता।

ज्ञानी ने अपने आनंदस्वभाव का स्वाद लेकर, निजनिधान को उपादेय किया है, वह अन्य किसी परभाव को अथवा संयोग को उपादेय नहीं मानता। स्व-वस्तु को पहिचानकर वह परवस्तु की क्यों इच्छा करेगा? अर्थात् उसे अपनी क्यों मानेगा?—नहीं मानेगा। शुद्ध चैतन्यमय आनंदभाव में ही धर्मी को स्वपना है, अर्थात् उसी का उसको परिग्रह है; राग में स्वपना नहीं, आहार की इच्छा में स्वपना नहीं अर्थात् उसका परिग्रह नहीं। सम्यग्दृष्टि-चक्रवर्ती को छह खंड का परिग्रह नहीं किंतु अपने शुद्ध ज्ञान-आनंदरूप निज वैभव का ही परिग्रह है। अजीव का परिग्रह जीव को किसप्रकार हो सकता है? चैतन्य से भिन्न ऐसे अचेतन का-राग का परिग्रह ज्ञानी को किसप्रकार हो सकता है? वह ज्ञान को और राग को एक नहीं करता, भिन्न ही रखता है। मैं स्वयं चैतन्यनिधान से परिपूर्ण हूँ, मैं ही सुखस्वरूप हूँ, अन्य

पदार्थों से मुझे क्या काम है ?—इसप्रकार जानता हुआ ज्ञानी इच्छा का या किसी भी परपदार्थ का परिग्रह नहीं रखता।

अहो, ज्ञानी की ज्ञानपरिणति अलौकिक है। संयोग से उसका माप नहीं हो सकता; राग से उसका माप होता नहीं; संयोग से तथा राग से पार उसका जो ज्ञान है, उसकी पहिचान के द्वारा ही ज्ञानी की पहिचान होती है।

यहाँ कहते हैं कि ज्ञानी आहार की इच्छा नहीं करता। अपने आत्मा के आनंदरस का स्वाद लेनेवाला धर्मी जीव पुद्गलमय आहार का जड़ स्वाद किस प्रकार लेगा ? अकषायरूप शांत वीतराग आनंदमय ऐसे आत्मभाव का आहार (अनुभव) ज्ञानी को है; जड़ भोजन का आहार ज्ञानी को नहीं, जड़ भोजन का एक कण भी आत्मा में प्रवेश नहीं कर सकता।

—तो क्या ज्ञानी आहार बिना ही जीवित रहता है ?

—हाँ; अपने चैतन्यमय ज्ञानभाव के द्वारा ही ज्ञानी जीवित है, पुद्गल के द्वारा ज्ञानी जीवित नहीं रहता। जीवित रहना अर्थात् विद्यमान रहना। ज्ञानभाव में ही आत्मा का सद्भाव है, ज्ञानप्राण के द्वारा ही आत्मा का जीवन है, ज्ञान में आत्मा का विद्यमानपना है; उसको टिकने के लिये पुद्गल के आहार की आवश्यकता नहीं। अरे, ज्ञानमय आत्मा, उसमें राग का प्रवेश नहीं। वहाँ जड़ का प्रवेश कैसा ? ऐसा ज्ञानमय जीवन, यही ज्ञान का जीवन है। जिसप्रकार सिद्ध भगवंतों का जीवन अतीन्द्रिय ज्ञानमय है, उसीप्रकार चौथे गुणस्थानवर्ती ज्ञानी का जीवन भी ऐसा ही अतीन्द्रिय ज्ञानमय है। (चतुर्थ गुणस्थान से ही श्रद्धा एवं स्वामित्व में नित्य पूर्ण स्व-तत्त्व को ही अपना माना है और वर्तमान साधकदशा अनुसार आंशिक अतीन्द्रिय ज्ञानमय है।)

अहो, मेरी वस्तु ऐसी ज्ञान-आनंदमय, उसकी महिमा की क्या बात! जैसे श्रवणबेलगोला के पहाड़ के ऊपर बाहुबली भगवान कैसे खड़े हैं! मानो पवित्रता का महान पिंड! उसीप्रकार यह असंख्यप्रदेशी आत्मा भी केवलज्ञान के अनंत प्रकाश से भरा हुआ है, ज्ञान-आनंद से परिपूर्ण अद्भुत निधानवाला है, इसकी महिमा का क्या कहना ? इसके वैभव का क्या कहना ? ऐसे आत्मा को जिसने अपने में देखा, वह अपने ज्ञान-आनंद के अनुभवरूप जीवन जीता है—यही ज्ञानी का जीवन है। राग के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता या भोजन के बिना मैं जीवित नहीं रह सकता—ऐसी मिथ्याबुद्धि ज्ञानी के होती नहीं। शरीर ही मैं नहीं हूँ, वहाँ भोजन मुझमें कैसा ? तथा इच्छाएँ भी मेरे ज्ञान में कैसी ? ज्ञान से जीना, ज्ञान से टिकना

इसमें इच्छाओं का तथा जड़ का अभाव है। जो ज्ञान में इच्छा का तथा जड़ का प्रवेश हो जावे तो, आत्मा का अस्तित्व ज्ञानरूप नहीं रहकर जड़रूप तथा रागरूप हो जायेगा, अर्थात् भावमरण होता है। आहार के द्वारा तथा इच्छाओं के द्वारा अपना जीवन माने, वह ज्ञानी नहीं; वह तो अज्ञानता से भावमरण कर रहा है। मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान में तो आनंद का भोजन है, ज्ञान तो नित्य-आनंद का भोगनेवाला है; 'आनन्दामृत-नित्यभोजि' अर्थात् ज्ञानी का ज्ञान हमेशा अपने आनंदरूपी अमृत का भोजन करनेवाला है। इसके अतिरिक्त राग का, पुद्गल का भोक्तापना ज्ञान में कभी नहीं।

इसप्रकार ज्ञानी का जीवन ज्ञानमय है। रागमय या पुद्गलमय नहीं। अपने ज्ञान तथा आनंद के स्वाद के द्वारा ज्ञानी जीवित रहता है; उसमें इच्छा का या भोजन का अभाव है, इसलिये उसके बिना ही ज्ञानी जीवित है—ऐसा ज्ञानी का जीवन है, ऐसी अंतरदशा के द्वारा ही ज्ञानी पहिचाना जाता है।

ज्ञानी चैतन्यरस का पान करता है, जड़ का नहीं

[समयसार गाथा २१३]

'दूध, पानी, ठंडे पेय, गन्ने के रस इत्यादि का पान उनकी धर्मी इच्छा नहीं करता अर्थात् क्या ? कि जिसने चैतन्य के निर्विकल्प आनंद-रस का पान किया है, वह अपने ज्ञानरस में इच्छा को या बाहर के पेय को एकमेक नहीं करता। मैं तो ज्ञानरस हूँ; जड़ का रस मेरे में नहीं, तथा उस तरफ की रागरूप इच्छा, उस राग का रस भी मेरे चैतन्यरस में नहीं है।—इसप्रकार चैतन्यरसरूप ही धर्मी जीव अपने को अनुभवता है। दूध-पानी इत्यादि जड़ के रसरूप धर्मी अपनी आत्मा का कभी भी अनुभव नहीं करता, उसमें अपना सुख देखता नहीं। निर्विकल्प चैतन्य के वेदन का जो सुख है, उसी का ज्ञानी अनुभव करता है। उस अनुभव के समक्ष संपूर्ण जगत के रस उसको नीरस लगते हैं।

क्या धर्मी पानी नहीं पीते ?

—नहीं; क्या पानी के रजकण धर्मी की ज्ञान-परिणति में प्रवेश कर सकते हैं ? संयोग में पानी पीने की क्रिया चलती हो, तब भी धर्मी उस पानी से भिन्न चिदानन्दस्वभाव को ही

अपने रूप करता है। पानी, वह मैं हूँ या पानी की इच्छा, वह मैं हूँ—ऐसा धर्मी कभी अनुभव नहीं करता, इसलिये उसको वह अपने में ग्रहण नहीं करता, इसलिये उसको उसका परिग्रह नहीं। अरे जीव! ऐसा भेदज्ञान करके, जड़ से भिन्न तेरे चैतन्यरस का स्वाद कैसा है, उसको पहिचान। एक बार समस्त परभावों से भिन्न होकर अपने निजभाव को अनुभव में ले—उसमें परम आनंद है। ऐसे अनुभव से ही धर्मीपना प्राप्त होता है।

आहार-पानी शरीर में पहुँचने की क्रिया हो रही हो, उस प्रकार का राग भी होता हो, वहाँ उस क्रिया को धर्मी जीव करता है—ऐसा तुम मत देखो, धर्मी जीव उस क्रियायप या रागरूप परिणमन कर रहा है—ऐसा मत देखो; किन्तु उसी क्रिया के समय, आहार-पानी के पुद्गलों से भिन्न, तथा उस तरफ के राग से भी सर्वथा भिन्न, ऐसी अन्तरंग में चैतन्यपरिणतिरूप ज्ञानी परिणमन करता है, इस क्रिया के कर्तारूप धर्मी को देखो।—इसप्रकार धर्मी जीव को उसकी निर्मल ज्ञानपरिणति में देखना, यही उनकी सच्ची पहिचान है। राग में या जड़ की क्रिया में धर्मी को देखना—यह सच्ची दृष्टि नहीं और ऐसी संयोग दृष्टि में ज्ञान तथा राग का भेदज्ञान नहीं। अहा! राग से भिन्न परिणमन करता हुआ धर्मी का ज्ञान, वह निर्मल भेदज्ञानवाली दृष्टि के बिना पहिचाना जा सकता हो, ऐसा नहीं। ज्ञान-वैराग्य संपन्न धर्मी जीव की अलौकिक दशा है। समस्त परभावों से उदासीन ज्ञान का अचिंत्य सामर्थ्य है कि जो आत्मा को राग से भी अलिप्त ही रखता है, तथा समस्त परभावों को अन्य के समझकर छोड़ता है। इसप्रकार पर्याय-पर्याय में परभावों से उदासीन वर्तता हुआ तथा परम ज्ञानमय निजभाव का अवलंबन लेता हुआ वह ज्ञान, अतीन्द्रिय आनंद का अनुभव करता हुआ केवलज्ञान की साधना करता है।

ऐसा ज्ञान वह ज्ञानी का काम है, इसके द्वारा ज्ञानी पहिचाना जाता है।

—००—००—

बंधन और मुक्ति

भेदज्ञान के एक ही प्रहार से राग और ज्ञान के दो टुकड़े हो जाते हैं। प्रज्ञाछैनी के प्रहार से ज्ञान और बंधभाव सर्वथा भिन्न हो जाते हैं। भेदज्ञानी राग को और चेतन को सर्वथा भिन्न जानता है, उनमें किंचित्भाव एकता नहीं देखता। इसप्रकार भिन्न जानकर अंतर में वह अपने को ज्ञानस्वरूप ही अनुभव करता है।—ऐसे अनुभव द्वारा बंधन टूटता है और मुक्ति होती है।

ज्ञानी के आत्म-अनुभव की महिमा

तथा

ऐसा आत्म-अनुभव करने की प्रेरणा

[कार्तिक कृष्णा चतुर्थी का प्रवचन : समयसार, गाथा २०६]

सुखी होने के लिये, आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! जितना ज्ञान का अनुभव है, उतना ही सच्चा आत्मा है—ऐसा जानकर तू आत्मा की प्रीति कर... आत्मा के अनुभव में ही संतुष्ट हो; उस ही मे तृप्त बन... अर्थात् तू आत्मा में ही रुचिवान हो जा। ऐसा करने से अपने अंतर में परम सुख का तुझे अनुभव होगा।

इसमें सदा प्रीतिवंत बन, इसमें सदा संतुष्ट अरु
इससे ही बन तू तृप्त, सुख उत्तम तुझे हो जायेगा॥२०६॥

प्रथम तो ज्ञान की कला के द्वारा ऐसा भेदज्ञान करो कि जो ज्ञान है, वह आत्मा है तथा राग, वह आत्मा नहीं। परद्रव्य के तरफ की वृत्ति अशुभ हो या शुभ हो—वह आत्मा नहीं, स्व से अनुभव में आनेवाला ज्ञान, वह आत्मा है। स्व-संवेदन की कला, वह मोक्ष की कला है। आत्मा के अनुभव की वह कला ही सच्ची कला है, इसका बारंबार अनुभव करनेयोग्य है। दुःख से छूटना हो तथा सुखी होना हो तो परभावों से भिन्न आत्मा को पहिचानकर उस ही का अभ्यास करनेयोग्य है। यह अभ्यास किसप्रकार करना, उसको २०६वीं गाथा में आचार्यदेव समझाते हैं।

तेरी वस्तु तो ज्ञानस्वरूप आत्मा है; शरीरादि कहीं तेरी वस्तु नहीं; रागादि आकुलताजनक क्षणिक भाव, वह भी कहीं जीवरूप से अनुभव में नहीं आते, वे वास्तव में जीव नहीं हैं। तब सच्चा जीव कैसा है ? कि जितना सत्य इस अनुभव में आनेवाला ज्ञान है उतना ही सत्य आत्मा है। इसलिये हे भव्य! तू ऐसे आत्मा में ही रति कर, उसका प्रेम कर, उसकी प्रीति कर। 'जितना ज्ञान, उतना सच्चा आत्मा' ऐसा कहकर अन्य सभी परभाव निकाल दिये।

जिसप्रकार मिश्री कितनी ?—कि जितनी मिठास है उतनी; कचरा या मैल वह मिश्री नहीं; उसीप्रकार आत्मा कितना ? जितना ज्ञान है, उतना ही सच्चा आत्मा है; जड़ का संयोग या रागादि का मैल, वह आत्मा नहीं। 'यह ज्ञानमय वस्तु ही मैं हूँ' ऐसा निर्णय करके उसी में प्रेम कर। संयोग को तथा पुण्य-पाप के भावों को अपने मान करके उनका अनादि से प्रेम कर-करके दु:खी हुआ, किन्तु वह तेरे नहीं थे। उनको भिन्न समझकर उनका प्रेम छोड़; तथा आत्मा को ज्ञानमय जानकर उसका प्रेम कर, तो तुझे उत्तम सुख होगा। परद्रव्य का प्रेम, यह दुर्गति है-संसार है; स्वद्रव्य का प्रेम, वह सुगति है, सुगति अर्थात् मोक्ष।—वह पर के आश्रय से प्राप्त नहीं होता; मोक्ष तो ज्ञानमय स्वद्रव्य के आश्रय से ही होता है।

ज्ञान तथा आत्मा, अर्थात् गुण तथा गुणी, यह एक ही वस्तु है, इतना ही सच्चा आत्मा है। राग तथा आत्मा, वह एक वस्तु नहीं। राग में तन्मयता के द्वारा आत्मा का अनुभव नहीं किया जा सकता, ज्ञान में तन्मयता के द्वारा आत्मा का अनुभव किया जाता है। राग की प्रीति करेगा तो आत्मा की प्रीति नहीं रहेगी। राग को साधन बनाकर उससे आत्मा का कल्याण माने तो उस जीव को राग का प्रेम है, उसको चैतन्यस्वरूप आत्मा का प्रेम नहीं। अरे, अभी तो बाह्य की चकाचौंध में आत्मा अर्पित हो जाता है, वह अंदर में चैतन्यस्वरूप का प्रेम किसप्रकार करेगा ? अनेक जीवों को तो चैतन्यस्वरूप आत्मा की बात श्रवण करने का भी अवकाश नहीं, संसार के तीव्र प्रेम में डूबे हुए हैं; ऐसे जीव तो महान दु:खी हैं।

भाई, बाहर के संयोग में या पुण्य के ठाट में आत्मा का किंचित् भी कल्याण नहीं। ज्ञान के अनुभव से ही कल्याण है। ज्ञानस्वरूप आत्मा का सच्चा अनुभव, वही सच्चा कल्याण है। अरे, राग का प्रेम, वह तो कुशील है; शुभराग का-पुण्य का प्रेम, वह भी कुशील है, यह भी संसार में परिभ्रमण करानेवाला है, भले ही स्वर्ग का भव प्राप्त करवा दे परंतु वह भी संसार ही है, उसमें किंचित् भी कल्याण नहीं है। पाप तथा पुण्य से पार ऐसा सहज ज्ञानस्वभाव है—ऐसा स्वभाव जिसको अच्छा लगता है, वह राग का प्रेम नहीं करता; ज्ञान का ही प्रेम करके उसका अनुभव करने से अपूर्व आनंद का अनुभव होता है—कि जिस आनंद की अपने को उसी समय खबर पड़ जाती है।

भाई, तुझे अपना अच्छा करना है न ! कल्याण करना है न ! हाँ; तो अच्छा तथा कल्याण, वह तो आत्मा का ज्ञान ही है; राग अच्छा नहीं, राग वह कल्याण नहीं। जन्म-मरण के क्लेश से

छूटना हो तथा मोक्ष के अविनाशी कल्याण को चाहना हो, उसको अपने ज्ञानस्वरूप आत्मा को ही कल्याणरूप जानकर उसी में सन्तुष्ट होना चाहिये। राग में कभी संतोष आ जाये, ऐसा नहीं; उसमें तो विषयों की इच्छा तथा आकुलता ही है; राग स्वयं ही आकुलतामय है तो उसमें संतोष कैसा ? ज्ञान है, वह निराकुल है; इसलिये उसके अनुभव से ही संतोष प्राप्त हो सकता है। इस भगवान आत्मा का प्रेम करके संतोष प्राप्त कर। जहाँ अनंत सुखस्वभाव से भरे हुए अपने आत्मा को देखा, वहाँ धर्मी को परम संतोष है; उसे अन्य किसी परभाव की अभिलाषा रहती नहीं; अचिंत्यशक्ति से भरे हुए आत्मा के अनुभव में सर्व प्रयोजन की सिद्धि है, तब फिर अन्य की ज्ञानी इच्छा क्यों करेगा ? मेरा सुख, मेरा आनंद, मेरा कल्याण, मेरा ज्ञान–सभी मुझमें नित्य परिपूर्ण हैं; इसप्रकार जहाँ आत्मा को अनुभव में लिया, वहाँ ज्ञानी को अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य कोई साध्य नहीं, अन्य किसी भी पदार्थ में सुखबुद्धि उत्पन्न नहीं होती।

ऐसे आत्मा के अनुभवरूप जो ज्ञान है, वही सच्चा कल्याण है—इसलिये ऐसे आत्मा में तू रुचि कर... ऐसे आत्मा से तू प्रीति कर, तथा उस ही में संतुष्ट हो। राग से प्यार मत कर, व्यवहार से प्रेम मत कर, बाहर के किसी भी भाव से प्रेम मत कर; क्योंकि उनमें कल्याण नहीं। आत्मा के ज्ञानानंदस्वभाव को ही प्यार करके उसका अनुभव कर, यही कल्याण है, यही मोक्षमार्ग है, यही परम सुख है। अन्य कहीं भी सुख ढूँढ़ने मत जा।

आत्मा को भूलकर अनंत बार शुभराग भी जीव ने किया, देवलोक में अनंत बार गया किंतु उसको कभी संतोष नहीं हुआ, क्योंकि सच्चा संतोष तो आत्मा में ही है; राग में कभी संतोष है ही नहीं, राग में तो दुःख ही है, जलन है। शांत रस का पिंड आत्मा है, उसके अनुभव में ही सच्चा संतोष है; वहाँ जगत के किसी भी पदार्थ की अभिलाषा नहीं रहती। बाहर के अमुक पदार्थ की प्राप्ति हो जाने से संतोष आ जायेगा—ऐसा आत्मा का स्वरूप नहीं। ज्ञानस्वरूप आत्मा स्वयमेव अपने से ही संतोषस्वरूप है। संतोष कहो या आनंद कहो; इस ज्ञानस्वरूप आत्मा का जितना अनुभव है, उतना आनंद है, उतना कल्याण है, उतना संतोष है।

अहो, यह ज्ञानस्वरूप ही अनुभव करने जैसा है !

उसके अनुभव से ही हे जीव ! तू सदा तृप्त हो !

आत्मा के कल्याण के लिये क्या करना, उसकी यह बात है; आत्मा ज्ञानमात्र है; ज्ञान वह आत्मा है; ज्ञान से विरुद्ध ऐसे रागादि कोई भी भाव, वह सच्चा आत्मा नहीं।—इसप्रकार

आत्मा को पहिचानकर; उसका परम प्रेम कर, उस ही में संतोष प्राप्त कर, तथा उस ही के अनुभव से तृप्त हो। इसप्रकार आत्मा में रत, आत्मा में संतुष्ट तथा आत्मा से तृप्त ऐसे तुझे वचन से अगोचर सुख प्राप्त होगा। वह अतीन्द्रिय सुख तत्क्षण ही तुझे अनुभव में आयेगा; अपने अनुभव की अपने को ही खबर पड़ती है, किसी से पूछने नहीं जाना पड़ता कि मुझे आनंद का अनुभव हुआ या नहीं ?

अंतर में उपयोग को लगाकर उस 'आत्म-उपयोग' के द्वारा आत्मा को ग्रहण किया, वहाँ कोई अचिंत्य आनंद अनुभव में आता है, उसको धर्मी ही जानता है। अहो! ऐसे आत्मा का ही अनुभव करने जैसा है।

धर्मी मुमुक्षु जीवों को कुछ अनुभव करने योग्य हो तो यह आत्मा ही है। इसी के अनुभव से सर्व दु:ख मिटकर परम आनंद होता है। रागादि परभावों के अनुभव में तो आकुलता है, दु:ख है। उससे रहित ऐसे ज्ञान का ही अनुभव करने जैसा है। अतीन्द्रिय सुख कहो या परम आनंद कहो, वह आत्मा के अनुभव में ही है। ऐसा अनुभव ही मोक्षमार्ग है; वही अमृत-मार्ग है; वही चिंतामणि-रत्न है, कि जिसके द्वारा इच्छित पद (सम्यग्दर्शन से लगाकर केवलज्ञान) प्राप्त किया जा सकता है। ऐसे ज्ञानस्वरूप के अनुभव के अतिरिक्त चाहे जितने उपाय करने में आयें, वह सब राग है—दु:ख है—संसार है, उसमें कहीं भी तृप्ति नहीं, शांति नहीं, उसमें तो आकुलता है। जिसके वेदन से तृप्ति हो, ऐसा परमसुख आत्मा के अनुभव में ही है, इसलिये आचार्यदेव कहते हैं कि हे जीव! ज्ञानस्वरूप आत्मा की पहिचान करके उसकी प्रीति कर! उसमें संतुष्ट हो, उसका ही अनुभव करके तृप्त हो... जिससे तुझे परम आनंद प्राप्त होगा।

आत्म-अनुभव की अपार महिमा

ज्ञान के अनुभव की अपार महिमा है। आचार्यदेव कहते हैं कि अहो! यह ज्ञानस्वरूप आत्मा धर्मी के अनुभव में आया है, वह स्वयं ही अचिंत्य शक्तिवाला देव है; वह चैतन्यचिन्तामणि है; जिसप्रकार चिंतामणि के द्वारा इच्छित पदार्थ की प्राप्ति होती है; उसीप्रकार यह आत्मा चैतन्य-चिंतामणि है; इसके सेवन से (बिना इच्छा के) सम्यग्दर्शन से लगाकर केवलज्ञान के सभी प्रयोजनों की सिद्धि हो जाती है। जहाँ सर्वसिद्धि करनेवाला अपना आत्मा

ही अनुभव में आ गया, वहाँ अब बाहर के अन्य किन्हीं भी पदार्थों के परिग्रह से या संकल्प-विकल्पों से धर्मी को क्या प्रयोजन है ? ज्ञानमूर्ति आत्मा प्राप्त हुआ, उसमें सभी आ गया, अब बाहर के किसी भी भाव की इच्छा धर्मी को नहीं; कहीं पर भी अंशमात्र आत्मबुद्धि नहीं रही। अहो, आत्मानुभव की ऐसी अपार महिमा है।—ऐसा अनुभव ही करनेयोग्य है, अन्य कुछ भी करनेयोग्य नहीं। सुख-आनंद अथवा मोक्ष ऐसे अनुभव में ही है। अहो! ज्ञानी ने ऐसा अनुभव करके अपने में चैतन्य-चिंतामणि प्राप्त किया है। 'सर्वज्ञ शक्तिवाला चैतन्यदेव मैं हूँ'—ऐसा जिसने अनुभव किया, उसको अब अन्य किसकी सेवा करना शेष रही ? सम्यग्दर्शन हुआ, वहाँ अनंत निधानवाला संपूर्ण आत्मा धर्मी ने पकड़ लिया; आनंद का सागर, ज्ञान का पिण्ड, आत्मा, वह धर्मी का परिग्रह है, इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ का परिग्रह धर्मी को नहीं।

जिसने सम्यग्दर्शन के द्वारा ऐसे आनंदमय आत्मा का अनुभव किया, वह धर्मी हुआ, सर्वसिद्धिसंपन्न ऐसा चैतन्यदेव उसने अपने में देखा। विभाव का पक्ष छोड़कर, चिदानंद -स्वभाव का पक्ष ग्रहण करने से जिस आनंद का अनुभव होता है, वह धर्मी ही जानता है; अज्ञानी को उसकी खबर नहीं। अरे, इस भगवान आत्मा में कौन सी अपूर्णता है कि अन्य के पास से लेने जाना पड़े ? निजशक्ति से परिपूर्ण भगवान आत्मा है। उसके चिंतवन में-अनुभव में परम आनंद है। अन्य प्रश्नों को छोड़कर ऐसे आत्मा के अनुभव का उद्यम कर; बारंबार उसमें उपयोग को लगाकर अनुभव कर। राग को प्रधान मत बना, चैतन्य भगवान को ही प्रधान कर। उसको प्रधान बनाकर उसके चिंतवन से सम्यग्दर्शन तथा सिद्धपद की प्राप्ति होती है। सादि-अनंत काल के सिद्धपद का आनंद देने की जिसमें शक्ति है, ऐसा कोई हो तो वह अपना चैतन्यदेव ही है; अन्य किसी के पास से आनंद प्राप्त हो जाये, ऐसा नहीं है। ऐसा जाननेवाला जीव अपने आत्मा के अतिरिक्त अन्य किसी भी पदार्थ के परिग्रह की इच्छा क्यों करेगा ? अर्थात् नहीं करेगा। उसको अपने से सर्वथा भिन्न जानता है तथा ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही परिग्रह करता है-सर्वप्रकार के श्रद्धान-ज्ञान-आचरण में उसी को ग्रहण करता है, परभाव के अंश को भी ग्रहण नहीं करता, उसको अपना 'स्व' नहीं मानता। मेरा स्व तो ज्ञानस्वरूप आत्मा ही है।—ऐसे स्व-तत्त्व का अनुभव करने जैसा है। ऐसे अनुभव से ही आत्मा का परम उत्तम अतीन्द्रिय सुख अनुभव में आता है।

जिसकी सेवा से, जिसके चिंतवन से, जिसके अनुभव से केवलज्ञान तथा सिद्धपद प्राप्त

होता है, ऐसा अपना आत्मदेव जिसको प्राप्त हुआ, चैतन्यचिंतामणि प्राप्त हुआ, वह धर्मात्मा अब अन्य का सेवन क्यों करेगा? अन्य का चिंतवन क्यों करेगा? अपने आत्मा को ही ध्येय बनाकर उसका चिंतवन करता है, तथा दिव्यशक्तिवान देव समझकर उसी की सेवा करता है। अरे, ऐसे आत्मा के अनुभव का यह अवसर है; आनंद की प्राप्ति का यह अवसर है।

—आज ही ऐसे आत्मा का अनुभव करो!

—००—००—

नित्य वैराग्यप्रेरक भजन

(राग-कडखा)

रचयिता : ब्रह्मचारी गुलाबचंदजी जैन

एक दिन ऐसा आयेगा, मानों जन्मा ही नहीं था,
चेत चतुर नर जागके, अवसर खो रहा झूठा।
शुद्धनयालंबी स्वयं, कर श्रद्धा-वीतरागी,
ज्ञान-विराग तभी सही, आराधक बड़ भागी।
वांछा तज संतोष धर मृत्यु गाज रही है,
व्यर्थ पराई चिंतना प्रत्यक्ष-दुःख मयी है।
अंधकार को मेटने, क्यों कुदाल उठावे,
सम्यक् ज्ञान प्रकाश से, बिन दुःख समता ही आवे।
कारण उसका खोज तो श्रीजिन ऐसा बतावे,
शुद्ध चिदानंद देव तू, श्रीगुरु घट में विराजे।
परमातम सुख तू सदा, अंतर में जा निहारो,
हेय-उपादेय तत्त्व को जानो अनुभव लाओ।
समय शक्ति उत्साह का उपयोग सयाने,
कर्तृत्व मद दु.खकार है, ज्ञायक में सुख पावे।
निज भावों में क्लेश नहीं पर-अपनाये है फाँसी,
ज्ञान-विराग स्वयं रचै भव-आशा जाये नाशी॥
एक दिन निश्चय आयेगा अवसर मृत्यु-समाधि,
जो गह नित सत् वीरता, जिनगुण संपत्तिकारी॥

मोक्षमार्ग साधने की रीति

भगवान ने पराश्रयरूप सब व्यवहार छुड़ाया है;
शुद्ध वस्तुरूप एक निश्चय का ही आलंबन कराया है।

सर्वज्ञ के मार्ग में वीतरागी संतों ने किस रीति से मोक्षमार्ग को साधा, उस विधि को बताते हुए आचार्यदेव सहानुभूति सहित कहते हैं कि पराश्रित ऐसे समस्त व्यवहार को छोड़कर, एवं स्वाश्रित ऐसे सम्यक् निश्चयरूप एक शुद्ध आत्मा में ही निष्कंप रहकर, वीतरागमार्गी संतों ने मोक्षमार्ग को साधा है। हम भी उस विधि से मोक्षमार्ग साध रहे हैं... और जगत भी उस एक ही रीत से मोक्षमार्ग को साधो।

(समयसार कलश १७३ के प्रवचन से)

मोक्षमार्ग में विचरते संत क्या करते हैं? वह बात है। मुनि हो या सम्यग्दृष्टि गृहस्थ हो—वे सब संत हैं, मोक्षमार्गी हैं। असंख्यात सम्यक्त्वी और करोड़ों मुनि, वे सब किस भांति मोक्षमार्ग को साधते हैं, वह यहाँ बताया है। इसमें जैनशासन का निचोड़ आ जाता है।

प्रथम तो सम्यग्दृष्टि जीवराशि अर्थात् सम्यग्दृष्टि जीवों का समूह महिमावंत ऐसे अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूप में लीन होकर परम सुख को अनुभवता है। शुद्ध स्वरूप में एकाग्रता द्वारा ही सुख है, किसी भी पराश्रयभाव में सुख नहीं है। पराश्रितभाव वे तो दु:ख हैं; अत: सभी पराश्रयभावों को छोड़ने के लिये भगवान का उपदेश है, और अकेले शुद्धस्वरूप का अवलंबन करने का ही भगवान का उपदेश है। इससे विरुद्ध माने, व्यवहार के आश्रय से लाभ माने, तो उसने भगवान के स्वावलंबी उपदेश को नहीं जाना है। भगवान का उपदेश तो स्वावलंबन का अर्थात् शुद्धात्मा के आश्रय का है और जो ऐसा करे, उसी ने भगवान के उपदेश को यथार्थ श्रवण किया है।

अहो! सर्वज्ञ भगवान का ऐसा उत्तम उपदेश सुनकर, सम्यग्दृष्टि जीव शुद्धात्मा में स्थिर होकर सुख का क्यों न अनुभव करे? सम्यग्दृष्टि तो शुद्धात्मा का आश्रय करके आनंद को

अनुभवता है–इसलिये सम्यग्दृष्टि होने की भी यही रीति है कि व्यवहार का आश्रय छोड़कर, शुद्धात्मा का आश्रय करना–यह भी इसमें आ गया है। भाई! यदि तुझे जन्म–मरण के दु:खों का अंत लाना हो व परम सुख का अनुभव करना हो, तो पर से अत्यंत भिन्न होकर, आत्मा को जानकर, उसी में स्थिरता कर।

भगवान के यथार्थ उपदेश द्वारा अपने शुद्धस्वरूप की परम महिमा आती है और राग की महिमा नहीं रहती। अत: धर्मी जीव रागादि के साथ एकताबुद्धि सर्वथा छोड़कर, अपने शुद्धस्वरूप में ही एकाग्र होकर उसके अनुभव से सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र प्रगट करता है। इस तरह शुद्धात्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग है, अत: उसका ही आश्रय करने योग्य है; और जितना भी पराश्रित व्यवहारभाव है, वह सब मोक्षमार्ग नहीं है परंतु बंधमार्ग है, अत: उस सबका आश्रय छोड़नेयोग्य है। अहो! ऐसे स्पष्ट मार्ग को भगवान ने दिव्यध्वनि द्वारा समवसरण में बताया और गणधर आदि संतों ने उस वाणी को झेलकर जगत के जीवों को उपदेश दिया। ऐसे मार्ग का निश्चय तो करो!

स्वाश्रित मोक्षमार्ग के सच्चे निश्चय द्वारा पराश्रयबुद्धि छूटती है और परिणति का जोर अंतर्मुख होता है। सर्व अरिहंतों ने शुद्धात्मा के आश्रय से ही मोक्षमार्ग कहा, राग के आश्रय या शरीर के आश्रय से मोक्षमार्ग नहीं कहा है। मोक्ष कौन पाता है? कि जो निश्चयरूप शुद्धात्मा का आश्रय करे वही। 'निश्चयनयाश्रित मुनिवर, प्राप्ति करें निर्वाण की।'

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे शुद्धात्मा के आश्रय का ग्रहण और व्यवहार के आश्रय के त्याग का उपदेश सुनते ही धर्म का कामी जीव अपने शुद्धस्वरूप का शीघ्र ही आलंबन करता है। जोर से अपने स्वभाव का आलंबन करता है... शुद्ध ज्ञानघन स्वभाव की महिमा में अपने आत्मा को एकाग्र करता है... निष्कंपरूप से आक्रमण करके शुद्धस्वरूप में पहुँच जाता है।

धर्मी शुद्ध स्वरूप में आक्रमण करता है, जल्दी से उसमें प्रवेश करके उसका अनुभव करता है। परभावों में नहीं रुकता परंतु उनसे भिन्न होकर शुद्धस्वरूप को पहुँच जाता है—अनुभव में लेता है। एक सम्यक् निश्चय का ही अनुभव करके शुद्धज्ञानघन की महिमा में ज्ञान स्थिर हुआ–वही शरण है, वही शांति है, वही मोक्षमार्ग साधने की रीति है।

'एक' अर्थात् अन्य सभी से निरपेक्ष, जिसमें निमित्त की, राग की, या भेद की अपेक्षा नहीं है, ऐसे शुद्ध ज्ञानघन निर्विकल्प एक स्वरूप का ही आश्रय (अनुभव) करने से मोक्षमार्ग

सधता है। इसके सिवा अन्य किसी के आश्रय से मोक्षमार्ग माने तो उसे मार्ग की विपरीतता है; अर्थात् मिथ्यात्व है। मोक्षमार्ग के जो रत्नत्रय हैं, वे अन्य द्रव्यों से अत्यंत निरपेक्ष हैं, और उन्हें एक अपने शुद्धस्वरूप का ही अवलंबन है। 'एकम् एव' अर्थात् एक सम्यक् निश्चय को ही अनुभवना—ऐसा कहकर अन्य सभी व्यवहार भावों का आश्रय जिनभगवान ने छुड़ाया है।

राग से तो निवृत्त होने को (विमुख होने को) भगवान ने कहा है; यदि राग में एकताबुद्धि करे तो जीव उससे कैसे पीछे मुड़े? और जो राग को मोक्ष का साधन मानते हों, वे उसमें एकताबुद्धि बिना किये नहीं रह सकते। यहाँ समझाते हैं कि हे भाई! मोक्ष का मार्ग तो एक शुद्ध आत्मवस्तु के आश्रय से ही है, अन्य किसी के आश्रय मोक्षमार्ग नहीं है। अतः सर्व पर के आश्रय को छोड़कर, संत मात्र एक निर्विकल्प चैतन्य वस्तु को ही अनुभवते हैं, उसका ही आश्रय करते हैं। जिसमें रागादि समस्त पराश्रयभावों का अभाव है, ऐसी निर्विकल्प वस्तु है, उसके अनुभव द्वारा ही सम्यक्त्वादि होता है, और मिथ्यात्व छूटता है।

जितने बहिर्मुखभाव हैं, वे मोक्षमार्ग नहीं हैं। अंतर्मुख शुद्ध आत्मा के आश्रयरूप वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। मोक्षमार्गरूप आत्मानुभव, उसमें अन्य किसी की मदद की अपेक्षा नहीं है। विकल्प की भी अपेक्षा नहीं है। ऐसा परम निरपेक्ष मोक्षमार्ग है।

जैसे स्व-पर की एकताबुद्धिरूप मिथ्यात्वभाव को बंध का ही कारण होने से भगवान ने उसे छुड़ाया है; वैसे ही शुभाशुभ जितने भी पराश्रय भाव हैं, वे सभी बंध के कारण होने से, भगवान ने उन पराश्रय भावों को छुड़ाया है। पराश्रित-ऐसा सर्व व्यवहार भगवान ने छुड़ाया है, अर्थात् उसका आश्रय छुड़ाकर सम्यक् निश्चयरूप एक शुद्ध आत्मा का ही निष्कंप आश्रय कराया है। उस ही के आश्रय में मोक्षमार्ग है। जितना शुद्धात्मा का आश्रय है, उतना ही मोक्षमार्ग है। जितना पराश्रयभाव है, उतना बंधभाव है। ज्ञानी को उन पराश्रय भावों में एकत्वबुद्धि छूट गयी है; अतः वह उनसे मुक्त ही है।

सम्यक् निश्चय में लीन और व्यवहार से मुक्त, ऐसे सम्यग्दृष्टि संत मोक्ष को साधते हैं। शुद्ध आत्मा को देखना-अनुभवना, उसे ही जैनशासन कहा है। व्यवहार का आश्रय करके अशुद्धता का अनुभव करे, उसे जैनशासन नहीं कहा है, उसे धर्म नहीं कहा है। शुद्ध वस्तु के अनुभव बिना धर्म कैसा? अभी तो शुभराग, वह जैनधर्म है, ऐसा माने वह राग का सेवन छोड़कर शुद्धवस्तु का सेवन कहाँ से करेगा? राग का सेवन, राग से तनिक भी लाभबुद्धि, वह

तो मिथ्यात्व ही है। मोक्षमार्ग तो भगवान ने शुद्धात्मा के सेवन से ही कहा है।

गुण-गुणीभेद संबंध कोई सूक्ष्म विकल्प हों, वे विकल्प अंतर का अनुभव करने में कुछ तो सहायक होते होंगे?—तो कहते हैं कि नहीं; सभी विकल्परूप व्यवहार का आश्रय छोड़ और शुद्धात्मा का आश्रय कर, तभी तुझे अंतर में आनन्द का अनुभव होगा; और तभी मोक्षमार्ग शुरु होगा। इस कलश के रचयिता श्री अमृतचंद्राचार्यदेव ने ही पुरुषार्थसिद्धि-उपाय शास्त्र रचा है; उसमें भी कहा है कि:—'एवमयं कर्मकृतैः भावैः असमाहितो अपि युक्त इव प्रतिभाति बालिशानां प्रतिभासः स खलु भवबीजम्।' (गाथा १४) यह चैतन्यस्वरूप शुद्धात्मा है, वह शरीरादि और रागादि ऐसे कर्मकृत भावों से असंयुक्त है-भिन्न है; तो भी बालिश अर्थात् अज्ञानी जीवों को वह रागरूप और शरीररूप हो, ऐसा प्रतिभासित होता है; अज्ञानियों का वह प्रतिभास ही वास्तव में भव का बीज है।

देखो, यह भव का बीज! उसके सामने मोक्ष का बीज क्या है?—कि 'निश्चयनयाश्रित मुनिवर प्राप्ति करें निर्वाण की' निश्चयनय द्वारा देह व राग से भिन्न ऐसे अपने शुद्धात्मा को अनुभव में लेना, वही मोक्ष का बीज है। उसमें कहीं भी राग की अपेक्षा नहीं है। राग से तो वह असंयुक्त है। शुद्धात्मा का अनुभव राग को स्पर्शता नहीं है।

राग से लाभ मानेगा, वह जीव रागरहित शुद्धात्मा का कैसे अनुभव करेगा? जिस सम्यक् स्वभाव में विकल्प ही नहीं, उसे अनुभव में-श्रद्धा में लेते ही किसी भी विकल्प में लाभबुद्धि नहीं रहती। विकल्प की परवाह बिना स्वयं आत्मा अपने को स्वानुभूति से अनुभवता है—ऐसा मोक्षमार्ग भगवान ने कहा है। राग-विकल्प या भेदरूप व्यवहार का जितना आश्रय है, उतना तो अशुद्ध भावबंध ही है, वह मोक्ष का कारण नहीं हो सकता।

अहो! ऐसे स्वाधीन मोक्षमार्ग का कौन सेवन नहीं करेगा? सम्यक् निश्चय ऐसे निज स्वरूप में कौन लीन नहीं होगा? और राग में—व्यवहार में कौन लीन रहेगा? संत अर्थात् सम्यग्दृष्टि साधक जीव विकल्प से भिन्न होकर, व्यवहार का आश्रय छोड़कर, एक सम्यक् निश्चयरूप निजस्वरूप महिमा में लीन होते हैं—उसे अनुभवते हैं—यही मोक्षमार्ग साधने की रीति है।

जिसने शुद्ध आत्मा को अनुभव में लेकर मिथ्यात्वभाव छोड़ा, उसके शुद्धस्वरूप से विरुद्ध ऐसे समस्त व्यवहारभाव छूट गये अर्थात् उन सब व्यवहारों में से उसके एकत्वबुद्धि

छूट गयी है। विकल्प, वे वीतरागस्वरूप से विपरीत हैं; उसमें सम्यग्दृष्टि को कहीं भी एकताबुद्धि नहीं रहती। अत: 'सम्यग्दृष्टि को व्यवहार नहीं है'—ऐसा कहा। वह एक सम्यक् निश्चयरूप शुद्धस्वरूप में ही तन्मय-लीन है। ऐसी अन्तरंग दृष्टि धर्मात्मा को ही होती है। धर्मात्मा की ऐसी अंतरदशा को व्यवहार की रुचिवाला नहीं पहिचान सकता। यह तो वीतरागी शास्त्रों को अपूर्व निचोड़ है। शुद्ध स्वरूप का अनुभव करना और व्यवहार का आश्रय छोड़ना ही सर्व वीतरागी शास्त्रों का तात्पर्य है; अत: वह जैनशासन का सार है और वह मोक्षमार्ग है।

❀❀❀

देखो! वीतरागमार्गी संतों ने मोक्षमार्ग किस तरह साधा, उसकी यह बात है। तीनों काल सर्व जीवों के लिये एक ही मोक्षमार्ग है—'एक होय तीन काल में, परमार्थ का पंथ' सम्यक्निश्चयरूप जो अपना शुद्धस्वभाव, उसका अवलम्बन लेने से अन्य सर्व का (भेद का, राग का, पर का) अवलम्बन छूट जाता है। पराश्रय भाव में राग की उत्पत्ति है, अत: जितने पराश्रित भाव हैं, उनका मोक्षमार्ग में निषेध है। शुभराग-विकल्प भले हों, परंतु धर्मी उन्हें मोक्षमार्गरूप नहीं जानते; उन्हें बंधभावरूप जानकर हेय समझते हैं। जगत में जो कोई सम्यग्दृष्टि-जीवराशि है, वह इसीप्रकार से मोक्ष को साधती है।

सम्यग्दृष्टि-जीवराशि

संसार में सम्यग्दृष्टि-जीवराशि असंख्यात है।

❀ नरक में सम्यग्दृष्टियों की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुने हैं।

❀ स्वर्ग में सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि असंख्यातगुने हैं।

❀ मनुष्यों में सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि संख्यातगुने हैं।

❀ तिर्यंचों में सम्यग्दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यादृष्टि अनंतगुने हैं।

❀ नरक में सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं।

❀ स्वर्ग में सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं।

❀ मनुष्य में सम्यग्दृष्टि संख्यात हैं।

❀ तिर्यंच में सम्यग्दृष्टि असंख्यात हैं।

❀ सिद्ध में तो अनंत जीव-सभी सम्यग्दृष्टि हैं, मिथ्यादृष्टि वहाँ हैं ही नहीं।

अब इन सब सम्यग्दृष्टि जीवों का समूह क्या करता है-तो कहते हैं कि शुद्धस्वरूप का

अवलम्बन लेकर आनंद का उपभोग करता है, और समस्त व्यवहार का अवलम्बन छोड़ता है। सिंह की भाँति निजानंद की मस्ती में विचरता है।

वर्तमान से लेकर भविष्य के अनंतानंत कालपर्यंत आत्मिक सुख का ही अनुभव करता है—ऐसा महा कार्य क्या व्यवहार के अवलंबन से होता होगा? नहीं; शुद्ध निश्चयरूप ज्ञानानंदस्वरूप के अवलंबन ही से अनंत काल का महान सुख प्रगटता है। अत: संत-सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा अतीन्द्रिय सुख के अभिलाषी, परम संतोष से, निजमहिमा से भरपूर शुद्धस्वरूप में ही एकाग्रता करते हैं। सम्यक् निश्चयरूप; निजस्वरूप के अलावा, अन्य किसी की महिमा सम्यग्दृष्टि को नहीं आती। भैया! तेरा पंथ बाह्य में नहीं है; तेरा पंथ राग में नहीं है, तेरा पंथ तेरे शुद्धस्वरूप में ही है। ऐसे शुद्धस्वरूप का जो अवलंबन करता है, वही भगवान के पंथ में है। राग से धर्म माने, वह भगवान के पंथ में नहीं है।

शुद्ध स्वरूप के वेदन में राग के वेदन का अभाव है। जिसका अभाव हो, उसका अवलंबन करने से शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो सकती है! नहीं हो सकती। अत: धर्मात्मा जीव राग का अवलंबन सर्वथा छोड़कर, शुद्ध स्वरूप की निज महिमा में ही ज्ञान को एकाग्र करते हैं।

सत्य वस्तु अर्थात् शुद्ध वस्तु निर्विकल्प है। किसी भी विकल्प द्वारा वह अनुभव में नहीं आ सकती, विकल्प उसमें प्रवेश नहीं पा सकता। धर्मी जीव ऐसी शुद्ध वस्तु को आक्रमता है अर्थात् पुरुषार्थ द्वारा उसमें पहुँच जाता है—अंतर्मुख होकर उसमें प्रवेश करता है। अन्य सर्व को छोड़ता है और अंतर में एक सम्यक्निश्चयनय को ही ग्रहण करता है-यही मोक्षमार्ग है, और यही धर्मात्मा का चिह्न है।

शुद्धस्वरूप को अनुभव में लेने पर उस शुद्ध स्वरूप से विपरीत जो कोई परभाव हैं, वे सब छूट जाते हैं। निश्चय का आश्रय करने से व्यवहार का आश्रय छूट जाता है। सर्वज्ञ के पंथ के पथिक ऐसे संत, इसप्रकार एक निश्चय के आश्रय से मोक्षमार्ग को साधते हैं।

आचार्य भगवान स्वयं ऐसे मोक्षमार्ग को साध रहे हैं, और जगत के जीवों को ऐसा स्वाश्रित मोक्षमार्ग दिखा रहे हैं। भैया! ऐसे मोक्षमार्ग के बिना पराश्रयभाव में तो तेरा अनन्त काल संसार में बीता। रागादि भावों को अपना मानकर अनंत काल तूने दु:ख में ही गमाया। उससे छूटने और अनंत काल का सुख पाने के लिये मोक्ष का यह महा पंथ वीतरागी संतों ने

बताया है, उसका सेवन कर। स्वभाव के सेवन से जो शुद्ध भाव प्रगटा, उसमें व्यवहार का बंधभाव तनिक भी नहीं है, वह अबंधभाव है, अबंध कहो या मोक्षमार्ग कहो।

गुरुदेव स्वाश्रित मार्ग के प्रति प्रमोद से कहते हैं वाह रे वाह! संतों ने ऐसा स्पष्ट मोक्षमार्ग खुला किया है। निश्चय स्वभाव के आश्रय से ही मुनियों ने मोक्ष को साधा है तथा व्यवहार के आश्रय से कभी भी मोक्ष नहीं साधा जा सकता। अत: सम्यग्दृष्टि को सभी व्यवहार का आश्रय छूट गया है, उसे जो शुद्धभाव प्रगट है, उसमें एक निश्चय का ही आश्रय है; व्यवहार का आश्रय उसमें से छूट गया है। ऐसी परिणति द्वारा ही मोक्षमार्ग सधता है—मोक्षमार्ग साधने की यह रीति है।

ज्ञानधारा और कर्मधारा दोनों की जाति बिल्कुल भिन्न है; ज्ञानधारा, वह मोक्षमार्ग है; कर्मधारा, वह बंधमार्ग है; ज्ञानधारा शुद्धात्मा के आश्रय से है, कर्मधारा पराश्रय से है। ज्ञानधारा का फल सादि अनंत परमानंद की प्राप्ति है; कर्मधारा-वह तो दु:खरूप है। इस तरह दोनों धाराओं की अत्यंत भिन्नता का स्वरूप अपने भावों में स्पष्ट भासना चाहिये; यदि दोनों को एक-दूसरे में मिला दे, बंधभाव के एक अंश को भी मोक्षमार्ग माने—तो उसने मोक्ष के कारण को जाना ही नहीं है, मोक्षमार्ग उसने देखा ही नहीं है, अत: वह तो बंधन में ही प्रवर्त रहा है। यहाँ उस बंधन से छूटने की और मोक्षमार्ग साधने की रीति वीतरागी संतों ने बताई है। देह का संयोग तो क्षण में छूट जाएगा—भैया! ऐसे जीवन में मोक्षमार्ग को साध—आत्मा के स्वरूप का निर्णय कर... और अरिहंतदेव के वीतरागी मार्ग में आ। बिना शुद्धात्मा के आश्रय से वीतरागमार्ग में नहीं आया जा सकता। वीतरागी मार्ग में संतों की कोई अजब शैली है! उनके अंदर के भाव अपूर्व गंभीर हैं। समयसारजी शास्त्र... कोई अपूर्व मांगलिक क्षण में, जगत के महाभाग्य से बन गया है... कुन्दकुन्दाचार्यदेव स्वानुभव में झूलते-झूलते अन्दर कलम डुबो-डुबोकर, पोन्नूर पर्वत पर जब यह समयसार लिखते होंगे (-उस समय की भावमयी अद्भुत चेष्टा बताकर गुरुदेव कहते हैं कि—) अहो! वीतरागी संतों ने निहाल कर दिया है! मोक्षमार्ग बताकर संतों ने निहाल किया है और भवभ्रमण से छुड़ाया है। ऐसा मोक्षमार्ग जानकर अंतर में उसका उद्यम करने जैसा है। ऐसा मोक्षमार्ग सुनने को भी महाभाग्य से मिलता है, और अंदर जो निश्चय करे, वह तो निहाल हो जाये—ऐसा है।

स्वाश्रय से जितनी निर्मलता हुई, उतना ही मोक्षमार्ग है और जितना पराश्रयरूप

अशुद्धभाव रहे, उतना बंधन है—ऐसा जानकर स्वाश्रयभाव में स्थिर हुआ, वहाँ उसमें व्यवहार का आश्रय छूट ही गया है। स्वाश्रयभाव और पराश्रयभाव दोनों में कभी एकता नहीं होती, दोनों भिन्न ही हैं। ऐसी भिन्नता का ज्ञान होना—वही मोक्षमार्ग का प्रारंभ है। यह भावना घोंट-घोंटकर अंतर में दृढ़ करने जैसी है; आत्मा में उसके संस्कार डालने से परम कल्याण होता है, और मोक्षमार्ग सधता है।

इस भाँति शुद्ध आत्मा के स्वाश्रय से मोक्षमार्ग साधने की विधि वीतरागमार्ग में संतों ने प्रसिद्ध की है। इस विधि द्वारा निश्चय के अवलंबन से मोक्षमार्ग को साधना, वही मुमुक्षु का कर्तव्य है।

अक्षय सुख का धाम

परम सुख का धाम... जहाँ किंचित् मात्र दुःख नहीं, जहाँ सुख के लिये आहार या जल की, वायु या औषधि की कभी आवश्यकता नहीं पड़ती, जहाँ काल का कोई प्रतिबंध नहीं है और मृत्यु का भी जहाँ प्रवेश नहीं है; जहाँ आत्मा सदैव एकाकी स्वाधीन सुख का उपभोग करता रहता है—ऐसे सिद्धपद को साधने के लिये हे जीव! तू तत्पर हो!

बंधन से कैसे छूटें?

जीव के बंध-मोक्ष का कारण जीव में ही है, बाह्य में नहीं।

(समयसार : बंध-अधिकार के प्रवचन से)

बंध-अधिकार में आचार्यदेव कहते हैं कि मिथ्यादृष्टि को बंध होता है और सम्यग्दृष्टि को बंध नहीं होता; क्योंकि उपयोग के साथ राग की एकतारूप जो चिकनाई है, वही बंध का कारण है, अन्य कोई बंध का कारण नहीं। इसलिये राग से भिन्न उपयोग का जिसने अनुभव किया है, ऐसे सम्यग्दृष्टि को बंध नहीं होता।

राग में एकरूप—तन्मय कौन वर्तता है ? कि मिथ्यादृष्टि ही वर्तता है। सम्यग्दर्शन के बाद चारित्र के दोषवश जो अल्प राग तथा बंधन होता है, उसको सम्यग्दृष्टि अपने उपयोग से भिन्न जानता है, इसलिए वास्तव में उसको बंधन नहीं।

मन-वचन-काया की क्रियाएँ तथा बाह्य संयोग मिथ्यादृष्टि तथा सम्यग्दृष्टि को समान होते हुए भी उस समय मिथ्यादृष्टि कर्मों से बँधता है और सम्यग्दृष्टि को बंध नहीं होता; इसलिए बाहर की क्रिया बंध का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध हो गया। बंध का कारण एक ही है कि उपयोगस्वरूप आत्मा के साथ रागादिक को एकरूप अनुभव करना। सम्यग्दृष्टि अपने को ज्ञानरूप ही अनुभव करता है, चैतन्यभूमि में अंशमात्र राग को सम्मिलित नहीं करता। रागरहित उपयोग, वह बंधन का कारण कैसे हो सकता है ? इसलिये धर्मी को बंधन नहीं।

ज्ञान, वह स्वतत्त्व है; राग, वह परतत्त्व है। देहादिक तो जड़ तथा पर हैं, वे तो बाहर रहे; अंदर जो सूक्ष्म राग है, वह भी ज्ञान से भिन्न ऐसा परतत्त्व है। ऐसे भिन्नता के अनुभव को ग्रंथिभेद अथवा सम्यग्दर्शन कहते हैं। उसमें बंधन का अभाव है, तथा बंध के कारणों का भी अभाव है। ऐसे ज्ञान के द्वारा यह जीव बंधन से छूटता है।

अनंत कार्मणवर्गणाएँ समस्त लोक में सर्वत्र भरी हुई हैं; जहाँ सिद्ध भगवान का निवास है, वहाँ भी अनंत कर्मवर्गणाएँ भरी हुई हैं, फिर भी सिद्ध भगवान को किंचित् भी कर्म का

बंधन क्यों नहीं होता ? क्योंकि उनके राग का सर्वथा अभाव हो गया है। कर्मवर्गणा कहीं बंध का कारण नहीं। यदि वह बंध का कारण हो तो सिद्ध भगवान को भी बंध होना चाहिये।

यह पाँच इन्द्रियाँ तथा भीतर का जड़-मन भी बंध का कारण नहीं; अर्थात् इन इन्द्रियों तथा मन का सद्भाव होने पर भी केवली भगवान को बंधन नहीं होता, क्योंकि केवली भगवान ने बंधन के कारण का अभाव किया है। इन्द्रियादिक यदि बंध का कारण हों तो केवली को भी बंध होना चाहिये। बंध का कारण तो उपयोग में राग की एकता करना है; और वह तो अज्ञानी को ही होती है, इसलिये अज्ञानी को ही बंधन होता है।

अरे, जीवों को मोक्ष के कारण की खबर नहीं तथा स्वयं को बंधन क्यों हो रहा है इसकी भी खबर नहीं; बंध का वास्तविक कारण अपने में है, उसे भूलकर बाहर की क्रियाओं को बंध का कारण मानते हैं, इसलिये छूटने का उपाय भी बाह्य में ही मानते हैं; यह दोनों में भूल हो गई।

उपयोग में रागादिक को मानना ही बंध का कारण है, ऐसा समझकर धर्मी ने भेदज्ञान के द्वारा उसका त्याग किया है। भेदज्ञान से वह जानता है कि मेरा उपयोग, उपयोग में है; राग में मेरा उपयोग नहीं; तथा राग मेरे उपयोग से बाहर राग में ही है, मेरे उपयोग में राग नहीं।—इसप्रकार राग के किसी भी अंश को धर्मी अपने उपयोग में नहीं मिलाता, उपयोग का शुद्ध ही अनुभव करता है; ऐसे अनुभव में धर्मी को बंधन नहीं होता।

आत्मा के उपयोग में रागादिक को करना अर्थात् उपयोग को रागादियुक्त अशुद्धरूप अनुभव करना ही निश्चय से बंध का कारण है; तथा उपयोग में रागादिक को न होने देना अर्थात् राग से भिन्न शुद्ध उपयोगरूप अपने को अनुभव करना ही निश्चय से मोक्ष का कारण है। बंध-मोक्ष के कारण का यह नियम है अर्थात् अबाधित सिद्धांत है।

आत्मा का उपयोगस्वभाव बंध का कारण नहीं, तथा परवस्तुएँ भी बंध का कारण नहीं। रागादिक को उपयोग के साथ एकमेक करने के जो अशुद्धभाव हैं, वही भावबंध है, तथा वही बंध का कारण है। ऐसा बंधन मिथ्यादृष्टि को ही होता है, सम्यग्दृष्टि को नहीं होता। ऐसा बतलाने का आचार्यदेव का अभिप्राय है। अहो, सम्यग्दर्शन होते ही जीव अबंध हो गया... सम्यग्दर्शन की ऐसी परम महिमा की जगत को खबर नहीं।

अज्ञानी को भी बाह्य क्रियाएँ, कार्मण-वर्गणाएँ अथवा इन्द्रियाँ कहीं बंध का कारण

नहीं, उपयोग में राग की एकता ही बंध का कारण है। जहाँ ऐसी एकता दूर हुई, वहाँ ऊपर कही हुई क्रियाओं की विद्यमानता होते हुए भी उसको बंधन नहीं होता—यह सम्यग्दर्शन का सामर्थ्य है।

मन-वचन-काया की क्रियारूप योग भी बंध का कारण नहीं, क्योंकि यथाख्यात संयमियों को (चारित्र धारण करनेवालों को) उपरोक्त मन-वचन-काया की क्रिया का योग विद्यमान होने पर भी बंध नहीं होता। उसीप्रकार जीव के कषाय रहित दशा में बाह्य में सचित्त-अचित्त पदार्थों का उपघात होता है, वह भी बंध का कारण नहीं; यदि बाह्य पदार्थ ही बंध का कारण हों तो समिति में तत्पर मुनिराज को भी बंधन होने का प्रसंग आ जायेगा, किंतु उन मुनिराज को बंधन नहीं होता, क्योंकि बंध का कारण जो राग के साथ एकता है, उसका उनके अभाव है। मिथ्यात्व ही बंध का कारण है; मिथ्यात्व रहित रागादि कषायभाव, वह बंध का गौण कारण है।

शरीरादि पुद्गल की क्रियाएँ जीव को बंध का कारण कैसे होंगी ? जीव के बंध का कारण तो जीव के भाव में होता है। जीव के मोक्ष का कारण भी बाह्य में नहीं; अपने स्वद्रव्यरूप सम्यग्दर्शनादि भाव ही मोक्ष का कारण है। जीव के उपयोग का रागादि के साथ युक्त होना ही बंध का कारण है तथा उपयोग का रागादि से भिन्न हो जाना, वह मोक्ष का कारण है।

अपनी अवस्था में दोष होना जीव को बंध का कारण है, किंतु अन्य भिन्न वस्तुओं में जो क्रिया हो, वह जीव को बंध का कारण नहीं हो सकती। रागादिक मलिन भावों के साथ एकता से चैतन्यभूमि मलिन हो जाती है, यही एकमात्र बंध का कारण है, अन्य कोई कारण नहीं। उपयोगभूमि जो आनंदस्वरूप है, रागरहित है; तथा रागादिक भाव तो दुःख रूप हैं; इसप्रकार भिन्नता समझकर उपयोग को राग से भिन्न अनुभव करना यह बंध से छूटने का उपाय है।

सम्यग्दृष्टि मन-वचन या शरीरादिक की क्रियाओं में वर्तता है, ऐसा उपचार से ही कहा जाता है। वास्तव में तो सम्यग्दृष्टि राग में भी नहीं वर्तता, तब फिर शरीर की क्या बात ? वह तो शरीर से तथा राग से भिन्न ऐसे उपयोग में ही वर्तता है। उपयोग में ही अपनत्व रूप से वर्तता है, राग में अपनत्वरूप से नहीं वर्तता, इसलिये उसको बंधन नहीं होता। रागरहित उपयोग बंध का कारण कैसे होगा ? बस, उपयोग में राग का अभाव ही मोक्ष का कारण है।

सम्यग्दृष्टि की कोई अद्भुत महिमा है कि उसको बंध नहीं होता; सर्व प्रसंगों में उसका

उपयोग राग से भिन्न ही वर्तता है; अंतर के स्वभाव में एकरूप वर्तनेवाला उसका उपयोग रागादिक अशुद्धभावरूप होता ही नहीं, इसलिये उसको बंधन नहीं; वह तो उपयोग को राग से भिन्न करके मोक्ष की साधना करता है। भावकर्म से भिन्न शुद्ध आत्मा ही सच्चा आत्मा है, वही समयसार है। ऐसे आत्मा का जो अनुभव करता है, उस धर्मी को बंध नहीं होता। ऐसा शुद्ध अनुभव ही मोक्ष का कारण है।

धर्मी को तो शरीर तथा राग में एकताबुद्धि छूटकर शुद्ध उपयोग के अनुभव से रागरहित भाव प्रगट हुआ है, इसलिये उसको बंधन नहीं, किंतु जिसको राग में तथा देह की क्रिया में ही एकताबुद्धि विद्यमान है, देह से तथा राग से भिन्न उपयोग की जिसको खबर नहीं, स्वच्छंद से राग में ही जो प्रवर्तता है और फिर भी कहता है कि मुझे बंधन नहीं होता, उसके तो मिथ्यात्व की तीव्रता है। भेदज्ञान क्या है, सम्यग्दर्शन क्या है, इसकी उसे खबर नहीं; वह तो तीव्र मिथ्यात्व के कारण बँधता ही है। सम्यग्दृष्टि को तो राग से भिन्न रागरहित भाव है, वह बंधन का कारण नहीं।

उपयोगस्वरूप शुद्ध आत्मा का अनुभव करता हुआ सम्यग्दृष्टि जीव अपनी उपयोगभूमि में राग को भी प्रवेश नहीं करने देता, तब फिर उसे कर्म का बंधन कैसे होगा? चैतन्य की भूमि में जहाँ राग ही नहीं, वहाँ कर्मबंधन कैसा? धर्मी के उपयोग में आत्मा समीप है–राग समीप नहीं, राग तो दूर है, भिन्न है; आत्मा के साथ एकता है, इसलिये आत्मा ही निकट है। जिसको राग के साथ एकता है, उसको आत्मा दूर है। शुभराग से मुझे लाभ होगा, शुभराग मेरे लिये मोक्ष का साधन होगा—ऐसा माननेवाले को शुद्धात्मा दूर हो वर्तता है। आत्मा का अनादर करके वह राग के साथ मित्रता करता है, यही बंध का कारण है। जिसको राग के साथ मित्रता का अभाव है, एकता–तन्मयता का अभाव है, उसको बंधन का अभाव है। वह तो ज्ञानस्वरूप ही परिणमन करता हुआ मोक्ष की साधना करता है। सम्यग्दृष्टि की ऐसी अद्भुत दशा है।

चौथे गुणस्थानवाला धर्मी जीव क्या करता है? कि ज्ञानरूप ही परिणाम करता है। शरीर को तथा राग को ज्ञान से भिन्न जानकर, अपने आत्मा को ज्ञानरूप ही अनुभव करता है। ज्ञान के अनुभव में अन्य किन्हीं भी रागादि भावों को किंचित् भी प्रवेश नहीं करने देता। ऐसा भेदज्ञान करना, यह महान कार्य है। मोक्ष के लिये यही वास्तविक महान कार्य है।

राग से भिन्न ज्ञान कहो या आनंद कहो, उसमें जहाँ एकता हुई, वहाँ समस्त संसार का अंत आ गया। अज्ञानी बाह्य में चाहे जितने व्रत-तप-त्याग करे, परंतु वह शुभराग को उपयोग के साथ एकमेक करता है, इसलिए उसके संसार विद्यमान ही है; क्योंकि राग में उपयोग की एकता ही संसार का मूल है। जिसने ऐसा अज्ञान तो दूर किया नहीं, और हिंसादिक भावों में वर्तता है, फिर भी कहे कि हमें भी बंधन नहीं होता—तो वह स्वच्छंदी है। ज्ञान की तो उसको खबर नहीं और परभाव की कर्तृत्वबुद्धि है, वह तो अज्ञान से अवश्य बंधन को प्राप्त होता है।

ज्ञानस्वरूप आत्मा को जो जानता है, वह राग को किंचित् भी नहीं करता। राग हो, वह बात अलग है, और राग में एकत्वबुद्धि से उसका कर्ता होना, यह बात अलग है। धर्मी तो राग तथा ज्ञान के भेदज्ञान सहित वर्तता है, उसको पर जीवों का कर्तृत्व या राग-द्वेष का कर्तृत्व नहीं है। 'मैं ज्ञान हूँ'—ऐसा स्वरूप भूलकर, 'शुभराग को मैं करता हूँ' तथा उससे 'पर जीवों को मैं जिला सकता हूँ' ऐसी बुद्धि भी जहाँ मिथ्यात्व है, तो फिर हिंसाभाव से परजीवों को मारने का अभिप्राय मिथ्यात्व क्यों नहीं होगा? शुभ या अशुभ किसी भी राग के कर्तृत्व का अभिप्राय, वह मिथ्यात्व है तथा वही बंध का कारण है। धर्मी को उसका अभाव है, इसलिये उसको बंधन नहीं होता।

धर्मी जानता है कि मैं ज्ञान हूँ; ज्ञानभाव, वह रागभाव नहीं। ज्ञानभाव में राग का अस्तित्व नहीं; ज्ञान का भी कर्ता हो और राग का कर्ता रहे—ऐसे दो विरुद्ध भावों का कर्तृत्व एकसाथ नहीं रह सकता। जिसको राग का कर्तृत्व है, उसको रागरहित ज्ञानभाव की खबर नहीं, तथा जिसको ज्ञानभाव प्रगट हुआ, ऐसे धर्मीजीव को राग का कर्तृत्व नहीं। इसप्रकार ज्ञान तथा राग की भिन्नतारूप परिणमन, वह धर्मी जीव को मोक्ष का कारण है।

आराधना का उद्यम

जिस मार्ग से-उपाय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र-तपरूप आराधना की प्राप्ति हो तथा उसकी अधिकाधिक विशुद्धि हो, ऐसे मार्ग का अनुसरण करना, आराधना-धारक धर्मात्माओं की संगति करना, उसी में मन-वचन-काया की प्रवृत्ति करना, आराधना के जो कारण हों, उनका ग्रहण करना तथा जो बाधक हैं, उनका त्याग करना—इसप्रकार जैसे आराधना हो वैसा उद्यम करना, उसका नाम आराधना का उद्यम है।

स्वाश्रित मोक्ष... पराश्रित बंधन

परपदार्थ जीव को बंध का कारण नहीं, उसीप्रकार मोक्ष का भी कारण नहीं; ऐसा समझकर निज ज्ञायक का ग्रहण एवं पर के साथ कर्तृत्वबुद्धि का त्याग करना, अर्थात् पर से भिन्न अपने ज्ञानस्वरूप का आश्रय करना—वही मोक्ष का कारण है।

—००—

❀ बाह्य पदार्थ जीव को बंध-मोक्ष का कारण नहीं—यह सिद्धांत समझाकर आचार्यदेव भेदज्ञान करवाते हैं; तथा स्वाश्रय से मोक्ष प्राप्त होने का उपाय बतलाते हैं।

❀ आत्मा अन्य पदार्थों से भिन्न होते हुए भी उनके कार्यों को मैं करता हूँ, अथवा उनके कार्यों से मुझे बंध-मोक्ष होता है—ऐसा जीव अज्ञान के कारण मानते हैं; और वह मिथ्या मान्यता ही अज्ञानमय होने के कारण बंध का कारण है। स्व-पर का भेदज्ञान करके ऐसी मिथ्या मान्यता का त्याग करके ज्ञानस्वरूप आत्मा का ज्ञानभावरूप ही रहना, वह मोक्ष का कारण है।

❀ बाह्य वस्तु निमित्त भले हो, किंतु उस वस्तु का कार्य उसी में है, अपने से बाहर उसका कार्यक्षेत्र नहीं है। जीव की अवस्था में उसका किंचित् भी कार्य नहीं है।

❀ जीव के बंध का कारण जीव में ही होता है, अन्य में नहीं हो सकता। उसीप्रकार जीव के मोक्ष का कारण जीव में ही होता है, उससे बाहर नहीं होता।

❀ **प्रश्न**—परद्रव्य यदि बंध का कारण नहीं, तो परद्रव्यरूप बाह्य वस्तु का त्याग करने का उपदेश किसलिये दिया जाता है ?

उत्तर—परद्रव्य के आश्रित होनेवाला जीव का भाव, वह बंध का कारण है; इसलिये उस पराश्रितभाव का त्याग करवाने के लिये परद्रव्य का त्याग करने को कहा गया है। परद्रव्य का त्याग करने का अर्थ है परद्रव्य का आश्रय छोड़कर स्वद्रव्य का आश्रय करना। परद्रव्य के आश्रय से बंधन है और स्वद्रव्य के आश्रय से मुक्ति है—यह महान सिद्धांत है।

❀ इसका वर्णन मोक्षप्राभृत में कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने किया है:—

परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रइ विरय इयरम्मि॥१६॥

स्वद्रव्य-रत पाये सुगति, परद्रव्य-रत जीव दुर्गति,
यह जानकर बन स्वरत जीव तू, हो विरत परद्रव्य से॥१६॥

स्वद्रव्य में तन्मयता से जीव को सुगति प्राप्त होती है तथा परद्रव्य में तन्यमता से जीव को दुर्गति होती है; ऐसा समझकर हे भव्य जीवो! तुम स्व-द्रव्य में रत (तन्मय) होकर परद्रव्य से विरक्त होओ!

सुगति अर्थात् मोक्ष तथा दुर्गति अर्थात् संसार की चारों गतियाँ; अथवा सुगति अर्थात् सम्यक् परिणति, शुद्ध परिणमन, वह मोक्ष का कारण है; तथा दुर्गति अर्थात् बुरी परिणति, अशुद्ध परिणमन, वह संसार का कारण है। इसलिये शुद्धज्ञानमय स्वद्रव्य का आश्रय करना तथा परद्रव्य का आश्रय छोड़ना, वह मोक्षमार्ग है, यह जैन सिद्धांत का सार है।

❀ जीव जो कुछ भी अज्ञानादिक बंधभाव करता है, उसमें परद्रव्य का ही आश्रय होता है; स्वद्रव्य के आश्रय से कभी बंध होने योग्य भाव होते ही नहीं। '**भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी हवइ जीवो**' भूतार्थस्वभाव के आश्रय से सम्यग्दर्शन है, उसीप्रकार सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र आदि वीतरागभाव अपने स्वभाव के आश्रित हैं। मोक्षभाव में स्वद्रव्य का आश्रय है तथा बंधभाव में परद्रव्य का आश्रय है।

❀ शुभ या अशुभ बंधभाव में पर का आश्रय है—यह बात यहाँ दृष्टांत द्वारा समझाते हैं—मैं इसे मारूँ—ऐसा अशुभ अध्यवसाय, अथवा मैं इसे बचा लूँ, मैंने इसको बचाया-बचाना चाहिये—ऐसा शुभ अध्यवसाय-कब होता है? कि सामने वैसे जीव की उपस्थिति होती है, तथा जीव उसका अवलंबन करे, तब ऐसी बुद्धि होती है कि इस जीव को मारूँ या मैं इसको बचाऊँ। सामने किसी जीव की उपस्थिति न हो, तो उसके अवलंबन के बिना ऐसा मारने का अथवा जिलाने का भाव ही कहाँ से उत्पन्न होगा? बंध्या के पुत्र को मैं मारूँ, या आकाश के फूल को मैं तोड़ूँ, ऐसा भाव किसी को होता नहीं, क्योंकि सामने वैसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं है।

❀ सामनेवाली वस्तु का अस्तित्व तो उसमें है, वह कहीं बंध का कारण नहीं, जीव जब

बंधभाव करता है, तब वह परवस्तु के आश्रय से ही करता है। इसलिये परवस्तु का आश्रय छोड़ने का भगवान ने उपदेश दिया है।

❀ परवस्तु ही बंध का कारण नहीं, किन्तु बंधन के समय जीव को पर का ही आश्रय होता है। अब परपदार्थ ही बंध के कारण बनते हों तो जगत में सदाकाल इनका अस्तित्व है, इसलिये सदाकाल बंधन होता ही रहेगा, मोक्ष कभी होगा ही नहीं।—किंतु ऐसा नहीं है, क्योंकि बाह्य वस्तु बंध का कारण नहीं; वे बाह्य-पदार्थ बंधभाव में निमित्त होने पर भी वह स्वयं बंध का कारण नहीं होते। स्व का आश्रय छोड़कर परद्रव्य का आश्रय लेकर अशुद्धभाव से परिणमन करे, तभी जीव को बंधन होता है। बंधभाव जीव करे और परद्रव्य का आश्रय न हो, ऐसा नहीं होता; क्योंकि स्वद्रव्य के आश्रय से कभी बंधभाव नहीं होते; बंधभाव पर के आश्रय से ही होते हैं।

❀ 'स्वाश्रितः निश्चयः पराश्रितो व्यवहार' 'स्वाश्रय से मुक्ति, तथा पराश्रय से बंधन'—यह महान सिद्धांत है।

भगवान जिनेश्वरदेव ने तो स्वद्रव्य के आश्रय से ही मोक्षमार्ग की साधना की है तथा वैसा ही स्वाश्रित-मोक्षमार्ग का उपदेश दिया है; परद्रव्य के आश्रित मोक्ष प्राप्त होने का भगवान ने नहीं कहा; भगवान ने देहादि परद्रव्य का ममत्व छोड़कर; ज्ञानमय स्वद्रव्य के आश्रय से मोक्ष की साधना की है। शुद्ध आत्मा के आश्रय से प्राप्त हुआ सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र ही मोक्षमार्ग है, क्योंकि वह स्वद्रव्य है। द्रव्यलिंग, शरीर की क्रियाएँ इत्यादि परद्रव्याश्रित हैं, शुभ विकल्प परद्रव्याश्रित हैं; वे जीव को मोक्ष का कारण नहीं हो सकते। (देखो, गाथा ४१०)

❀ आत्मा के ही अशुद्ध या शुद्ध परिणाम आत्मा को बंध-मोक्ष का कारण होते हैं; परद्रव्य के परिणाम जीव को बंध-मोक्ष का कारण नहीं हो सकते। क्योंकि—

कोई मुनिराज ईर्यासमितिपूर्वक गमन करते हों, हिंसा तथा प्रमाद का भाव न हो, फिर भी कोई जीव-जंतु अचानक उड़कर पाँव के नीचे दबकर आयु पूर्ण होने के कारण मर जाता है, वहाँ बाह्य में जंतु के मरने पर भी हिंसाभाव के अभाव के कारण उन मुनिराज को बंधन नहीं होता। इसलिये यह सिद्धांत निश्चित हो गया कि बाह्य वस्तु बंध का कारण नहीं, जीव के हिंसादिभाव ही बंध के कारण है।

जीव को जो तद्भावरूप हो अर्थात् जीव के अस्तित्व में जो हो, वही बंध-मोक्ष का कारण होता है। किंतु जीव को जो अतद्भावरूप हो अर्थात् जीव के अस्तित्व में जो नहीं हो, वह जीव को बंध-मोक्ष का कारण नहीं हो सकता। पर को मारने-जिलाने की बुद्धिरूप जो अध्यवरूप होते हैं, वही बंध का कारण है।

पर जीव का मरण या जीवन, वह इस जीव से भिन्न है, वह जीव को बंध का कारण नहीं।

ऐसा समझकर पर जीव के साथ एकताबुद्धि का त्याग करना अर्थात् पर के आश्रय की बुद्धि का त्याग करना तथा पर से अत्यंत भिन्न अपने ज्ञानस्वरूप को पहिचानकर स्व-द्रव्य का आश्रय करना—वह मोक्ष का उपाय है।

आनंद का घट

संत कहते हैं कि—हे जीव! इस घट-आकार शरीर में आनंद से भरपूर आत्मा है, वह आनंद का घट है। आनंद से परिपूर्ण आत्मा तेरे पास पड़ा है... अरे, तू स्वयं ही वह है, तथापि वह क्यों तुझे आनंदित नहीं करता?—क्योंकि तू उसमें अपनी बुद्धि को नहीं लगाता; तेरी बुद्धि कहीं अन्यत्र भटक रही है; अपने निजानंद का तू उपयोग नहीं कर पाता। यदि आनंदमय स्वतत्त्व में बुद्धि को लगाये तो तेरा आत्मा आनंदित हो।

विज्ञप्ति

पूज्य श्री कानजीस्वामी की ८०वीं जन्म-जयंती के उपलक्ष में सोनगढ़ में जो भव्य एवं आदर्श परमागम मंदिर निर्माण कराने का निर्णय किया गया है, उसमें अनेक मुमुक्षुओं की ओर से गाथाएँ उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकमें लिखवायी जा रही हैं। कुछ भाई-बहिनों ने ऐसी सलाह दी है कि एक-एक गाथा उत्कीर्ण कराने के लिये अमुक रकम तय कर दी जाये तो दान देनेवालों को इस बात का संतोष होगा कि हमने भी इस पवित्र कार्य में अमुक गाथाएँ उत्कीर्ण करवाकर अपना यत्किंचित योगदान दिया है। इस सलाह को ध्यान में लेकर गाथा और उसकी टीका के लिये ५०१) पाँच सौ एक रुपये की रकम निश्चित की गई है।

अभी तक जो रकमें आयी हैं, उनका हिसाब भी एक गाथा-टीका के ५०१) पाँच सौ एक रुपये गिना जायेगा।

जिन मुमुक्षुओं को अपनी ओर से एक पूर्ण गाथा-टीका उत्कीर्ण कराने की भावना हो और जिन्होंने ५०१) पाँच सौ एक रुपये से कम रकम परमागममंदिर हेतु लिखवायी हो, वे बाकी रकम देकर अपनी भावना पूर्ण कर सकते हैं।

लि.—

श्री परमागम मंदिर कमेटी

श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल-बम्बई

—००—००—

विज्ञप्ति

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट की ओर से श्राविकाशाला के कम्पाउंड में १६×१० साइज के कमरे बनवाने का निर्णय किया गया है। जो महानुभाव अपने नाम के कमरे बनवाना चाहते हों, वे निम्नोक्त नियमों एवं शर्तों पर बनवा सकते हैं:—

(१) प्रत्येक कमरे के लिये २००१) रुपये ट्रस्ट को देना होंगे।

(२) कमरे की मालिकी ट्रस्ट की रहेगी।

(३) कमरा बनवानेवाले या उनके स्वजनों को आना हो तो १५ दिन पूर्व सूचना मिलने पर कमरा खाली करवा दिया जायेगा।

(४) कमरा बनवानेवाले जब सोनगढ़ से बाहर जायें तब कमरा ट्रस्ट को सौंपकर जाना होगा। उन्हें अपना सामान रखने के लिये कमरे में ऊपर मचान बनवाकर व्यवस्था कर दी जायेगी।

लि०-

दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

आत्मधर्म के ग्राहकों को

आवश्यक सूचना

प्रिय महानुभाव !

(१) आत्मधर्म का नया वर्ष आगामी वैशाख महीने से अंक नं. ३०२ के साथ प्रारम्भ होगा। चालू वर्ष (२०२५-२६) का चंदा अब नहीं लिया जाता।

(२) ग्राहकों से निवेदन है कि अपना आगामी वर्ष (संवत् २०२६-२७) का चंदा ३/ तीन रुपये मनीआर्डर द्वारा भिजवा देवें, ताकि अंक यथासमय आपको मिलता रहे।

(३) जिन नगरों में दिगम्बर जैन मुमुक्षु मंडल हैं, उनसे निवेदन है कि अपने नगर के ग्राहकों का चंदा एकसाथ लिस्ट बनाकर मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट द्वारा भिजवा देवें।

(४) संस्था की ओर से वी.पी. नहीं की जाती। आपकी ओर से सूचना मिलने पर ही आत्मधर्म की वी. पी. की जायेगी।

(५) चंदा भेजते समय अपना ग्राहक नंबर एवं पूरा नाम और पता जिला-तहसील सहित स्पष्ट अक्षरों में अवश्य लिखें। पता स्पष्ट न होने से आत्मधर्म मिलने में विलंब होता है।

चंदा निम्न पते पर भेजें:—

मैनेजर

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) (गुजरात राज्य)

— आवश्यक सूचना —

श्री वीतराग विज्ञान विद्यापीठ परीक्षा बोर्ड
टोडरमल स्मारक भवन जयपुर का
परीक्षा परिणाम ''जैन संदेश'' चौरासी मथुरा में
प्रकाशित हो रहा है। संबंधित संस्थाएँ नोट कर लें।

—मंत्री

विश्वतत्त्वों का सत्यस्वरूप सम्यक् अनेकांत द्वारा बतलाकर सच्चा समाधान, एवं अपूर्व शांति का उपाय दर्शानेवाले—

सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

१	समयसार	(प्रेस में)
२	प्रवचनसार	४.००
३	समयसार कलश-टीका	२.७५
४	पंचास्तिकाय-संग्रह	३.५०
५	नियमसार	४.००
६	समयसार प्रवचन (भाग-४)	४.००
७	मुक्ति का मार्ग	०.५०
८	जैनसिद्धांत प्रश्नोत्तरमाला भाग-१	०.७५
	" " " भाग-२	१.००
	" " " भाग-३	०.५०
९	चिद्विलास	१.५०
१०	जैन बालपोथी	०.२५
११	समयसार पद्यानुवाद	०.२५
१२	द्रव्यसंग्रह	०.८५
१३	छहढाला (सचित्र)	१.००
१४	अध्यात्म-संदेश	१.५०
१५	नियमसार (हरिगीत)	०.२५
१६	धर्म के संबंध में अनेक भूलें	बिना मूल्य
१७	अष्ट-प्रवचन	१.५०
१८	मोक्षमार्गप्रकाशक (ढूंढारी भाषा में) (सस्ती ग्रंथमाला दिल्ली)	२.२५
१९	पण्डित टोडरमलजी स्मारिका	१.००
२०	अपूर्व अवसर-प्रवचन	१.५०
२१	बालबोध पाठमाला, भाग-१	०.४०
२२	बालबोध पाठमाला, भाग-२	०.५०
२३	बालबोध पाठमाला, भाग-३	०.५५
२४	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-१	०.५०
२५	वीतरागविज्ञान पाठमाला, भाग-२	०.६५
	पाँच पुस्तकों का कुल मूल्य	२.६०
२६	लघु जैन सिद्धांत प्रवेशिका	०.२५
२७	सन्मति संदेश (पूज्य श्री कानजीस्वामी विशेषांक)	०.५०
२८	मंगल तीर्थयात्रा (गुजराती-सचित्र)	६.००

प्राप्तिस्थान :

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट,

सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट सोनगढ़ के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक :

मगनलाल जैन, अजित मुद्रणालय, सोनगढ़ (सौराष्ट्र)